पहचान की तलाश में राजपूत!

धार्मिक सामासिकता को चुनौतियाँ

आसिफ इक़बाल

आकार

सहयोगी प्रकाशक

ŚRUTI

Society for Rural Urban & Tribal Initiative

पहचान की तलाश में राजपूत!
धार्मिक सामासिकता को चुनौतियाँ
आसिफ इक़बाल

© श्रुति

प्रथम संस्करण : 2009

ISBN 978-81-89833-88-6

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक
आकार बुक्स
28 ई पॉकेट IV, मयूर विहार फेज I, दिल्ली–110 091
फोन : 011–2279 5505 टेलीफैक्स : 011–2279 5641
aakarbooks@gmail.com; www.aakarbooks.com

सहयोगी प्रकाशक
श्रुति
क्यू–1, होजखास एनकलेव, नई दिल्ली–110 016
Web : www.sruti.org.in
E-mail : sruti@vsnl.com

मुद्रक
अर्पित प्रिंटोग्राफर्स
E-mail : arpitprinto@yahoo.com
फोन : 9350809192

प्रस्तावना

चाहे राजशाही हो या लोकशाही, धर्म और जाति ने शासकों और सत्ता का अस्तित्व प्रभावित व निर्धारित करने में हमेशा ही एक अहम भूमिका अदा की है। इतिहास में झांकने पर पता चलता है कि धार्मिक और राजनैतिक संस्थान सत्ता के लिए बार-बार एक-दूसरे को चुनौती देते रहे हैं और दोनों के बीच कड़ी प्रतिस्पर्धा रही है। परंतु धीरे-धीरे इन दोनों के बीच सहअस्तित्व का एक अनकहा सिद्धांत विकसित होता गया जिससे दोनों की ही जड़ों को ताकत मिलती है। दरबारियों में राज पुरोहितों और उलेमाओं की मौजूदगी विभिन्न साम्राज्यों में धार्मिक प्रभुत्व का एक अच्छा उदाहरण है। धर्म और राज्य के बीच परस्पर निर्भरता का यह संबंध आज के समाज में भी बना हुआ है। पीछे मुड़कर देखने पर पता चलता है कि ऐसा संबंध जनता के लिए प्रायः दमनकारी होता है। लिहाज़ा, भारत के संविधान की रचना करते हुए इस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया था। आधुनिक राज्य को धर्म से अलग रखने की हमारे संविधान में स्पष्ट कोशिश दिखाई देती है। संविधान की प्रस्तावना में ही घोषणा कर दी गई है कि भारत एक “धर्मनिरपेक्ष” देश है। समाज के हाशियाई तबकों के प्रति राज्य की असंवेदनशीलता की आशंका को देखते हुए धर्म में निहित जनकल्याण वाली भूमिका को राजनीतिक बुद्धिजीवी वर्ग में चली लंबी बहस के बाद आधुनिक राज्य के सुपुर्द कर दिया गया था। खेद की बात है कि आधुनिक राज्य की देखरेख में एक “न्यायसंगत समाज” की स्थापना का यह सपना अपेक्षाओं के अनुरूप साकार नहीं हो पाया। इस विफलता के चलते हमारे समाज में नए सिरे से धार्मिक असुरक्षाएं पैदा होने लगी हैं।

राज्य के धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक स्वरूप को पुष्ट करने के लिए चिंतित नागर समाज और राजनीति, दोनों ही लगातार (1950 में गणतंत्र

बनने से लेकर अब तक) संघर्ष करती रही हैं। राजनीतिक दलों के वचन और कर्म में भारी फासला दिखाई देता है क्योंकि ये पार्टियां अपने वोट बैंक पर किसी भी तरह की आंच नहीं आने देना चाहती। वे समाज में गहरी जड़ें जमाए बैठे धार्मिक और जातीय विश्वासों के नकारात्मक महत्व और उपस्थिति से बखूबी वाकिफ हैं। राजनीतिक दल इन "सामाजिक साधनों" का सत्ता में पहुंचने के लिए जानबूझ कर इस्तेमाल कर रहे हैं। दरअसल, सभी प्रमुख राजनीतिक दल धर्म के पत्ते का इस्तेमाल करने से बाज नहीं आते। कुछ खुलेआम इसका इस्तेमाल करते हैं तो कुछ छिपे-ढंके अंदाज में इस कार्ड का इस्तेमाल कर रहे हैं। सभी राजनीतिक पार्टियां बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक, सभी समुदायों में धार्मिक असुरक्षाओं को हवा दे रही हैं। इनकी गतिविधियां एक-दूसरे के लिए पूरक का काम करती हैं। बाबरी मस्जिद का ध्वंस, 1984 में सिखों का कत्लेआम और गुजरात के दंगे इसी बजबजाती साम्प्रदायिक राजनीति के रोंगटे खड़े कर देने वाले उदाहरण हैं।

राजस्थान में प्रमुख धार्मिक समुदायों के बीच बढ़ते ध्रुवीकरण को ध्यान में रखते हुए श्रुति के साथियों ने महसूस किया कि इन घटनाओं को समझने और दर्ज करने के लिए फौरन प्रयास किया जाना चाहिए। लिहाज़ा, मैंने एक ऐसे समुदाय से दस्तावेज़ीकरण का सिलसिला शुरू किया जो पिछले छः-सात सौ सालों से सामासिक (सिंक्रेटिक) परंपराओं पर चलता रहा है। प्रस्तुत रिपोर्ट में जिस चीता-मेहरात समुदाय का अध्ययन किया गया है वह एक ऐतिहासिक भूल के नाम पर धार्मिक राजनीति का मोहरा बनता जा रहा है। मैंने यह रिपोर्ट इस समुदाय में प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर लिखी है। संबंधित क्षेत्र की यात्राओं के दौरान मैंने समुदाय में प्रचलित कहानियों के साथ-साथ उपलब्ध दस्तावेज़ी तथ्यों की पड़ताल का भी प्रयास किया है।

मैं आशा करता हूं कि यह रिपोर्ट भारत में सामासिक परंपराओं के लिए पैदा हो रहे ख़तरे को रेखांकित करने में मददगार साबित होगी। मुझे विश्वास है कि यह रिपोर्ट भारत के विभिन्न राज्यों में स्थानीय स्तर पर काम कर रहे कार्यकर्ताओं के लिए काफी फायदेमंद रहेगी।

आभार

सबसे पहले मैं करुणा का ही आभार व्यक्त करूंगा जिनसे मुझे 2006 में अपनी अजमेर यात्रा के दौरान चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात समुदायों के बारे में शुरुआती जानकारियां मिलीं। उसी समय मैंने शहर के पास स्थित चीता-मेहरात समुदाय के एक गांव की यात्रा की तथा कुछ ऐसे लोगों से मिला जो इस सामासिक परंपरा की तस्दीक कर सकते थे। यह मेरे लिए एक अलग तरह का अनुभव था। पिछले साल ही हमने राजस्थान में फैल रही साम्प्रदायिक राजनीति पर एक स्टेटस रिपोर्ट लिखने का फ़ैसला लिया था और आख़िरकार अब यह अध्ययन सही मायने में शुरू हो रहा था। स्टेटस रिपोर्ट लिखने का फ़ैसला राजस्थान में सक्रिय श्रुति के फेलोज़ से मिल रहे फीडबैक के आधार पर लिया गया था। इन साथियों से हमें पता चल रहा था कि उनके कार्यक्षेत्रों में साम्प्रदायिक घृणा किस तरह फैलती जा रही है। शुरुआत में श्रुति के साथियों ने तय किया था कि 15-20 दिन के लिए एक जीप किराए पर लेकर राजस्थान के उन इलाकों का दौरा किया जाए और हालात का जायजा लिया जाए जहां साम्प्रदायिक राजनीति उग्र रूप ले रही है। मैंने तय किया कि यह अभियान चीता-मेहरात समुदाय से शुरू किया जाना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैं योगी सिकंद के साथ इस समुदाय की संक्षिप्त यात्रा पर गया क्योंकि सिकंद के पास भारत के सामासिक समुदायों का बहुत विशद ज्ञान है। उन्होंने हरियाणा में रहने वाले मेव समुदाय के इतिहास और धार्मिक आस्थाओं के बारे में काफी लिखा-पढ़ा है। चीता-मेहरात समुदाय की तरह मेव मुसलमानों में भी सामासिकता का बहुत लंबा इतिहास रहा है। अपनी पहली यात्रा के दौरान ही मैंने महसूस किया

कि यह समुदाय जितने बड़े इलाके में फैला हुआ है उसके लिए अपने निष्कर्षों को समझने और दर्ज करने के लिए हमें और ज्यादा समय निकालना होगा। मैं चांद भाई चीता को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहता हूं जिन्होंने हर यात्रा के दौरान मुझे काफी समय दिया। उनके साथ हुई गहरी चर्चाओं से मुझे समुदाय को और अच्छी तरह समझने तथा समुदाय के दूसरे कई नेताओं से मिलने-जुलने का मौका मिला।

मैं प्रोफेसर जलालुद्दीन काठात, पीरू काठात, शफ़ी मोहम्मद और वहां के अन्य सम्मानीय निवासियों का भी आभारी हूं जो राजस्थान चीता-मेहरात (काठात) महासभा नामक पंजीकृत संस्था का नेतृत्व संभालते हुए इस समुदाय के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य को सुधारने का प्रयास कर रहे हैं। इन सज्जनों ने महासभा के पास उपलब्ध दस्तावेज़ों के हवाले से अपने समुदाय के साथ हो रहे राजनीतिक और धार्मिक भेदभाव के बारे में अपने बहुमूल्य अनुभव मुझे बताए। गुलाब सिंहजी ने अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर समुदाय के साथ अपने अनुभवों के बारे में बताया। राजस्थान चीता मेहरात मगरा मेरवाड़ा महासभा नामक पंजीकृत संस्था की कोशिशों के बारे में उन्होंने उत्साहपूर्वक जानकारी दी। इनके अलावा मंगीलाल काठात, भंवर सिंह चौहान, रमा काठात, मुमताज़ अली, मुहम्मद बख्श कुरैशी, मोहब्बत खान तथा कई अन्य जाने-माने लोगों ने भी मुझे महत्वपूर्ण मौखिक सूचनाएं दीं। मुझे भूतपूर्व विधायक (भाकपा) नूरा काठात से बलेसिया नंदवाड़ा स्थित उनके नए मकान में मिलने का मौका मिला। उन्होंने शहर से अपने घर तक आने के लिए मुझे गाड़ी मुहैया कराई जिसके बिना मैं उनसे मुलाकात नहीं कर सकता था। उन्होंने समुदाय में कम्युनिस्ट प्रभावों के प्रसार और पतन के बारे में बहुत सारी दिलचस्प जानकारियां दीं। आत्मा राम (जागा, जिन्हें बही-भट्ट भी कहा जाता है) और अब्दुल गफ़्फ़ार शाह (साई या फकीर) से भी मुझे अपनी खोज को और दुरुस्त करने में भारी मदद मिली क्योंकि उनके परिवार चीता-मेहरातों के साथ ऐतिहासिक रूप से जुड़े रहे हैं। रामसिंह रावत ने अपनी व्यस्तताओं में से समय निकालकर मुझे 80 साल से भी ज्यादा उम्र के बुजुर्ग पन्ना सिंह रावत से मिलवाया जिन्होंने रावत समुदाय के इतिहास पर रोशनी डाली। समुदाय के बीच सक्रिय कुछ धार्मिक नेताओं के साथ मुलाकात से उनकी गतिविधियों में आ रही रुकावटों का पता चला।

डॉ. वासुदेव मंगल ब्यावर के एक सम्मानित व्यक्ति हैं। उन्होंने ब्यावर के इतिहास से संबंधित जानकारियां और दस्तावेज़ उपलब्ध कराए। इनके आधार पर आधुनिक इतिहास में इस समुदाय की व्याख्या करने में मदद मिली है। जयपुर में दि हिंदू के विशेष संवाददाता मोहम्मद इकबाल ने अखबारी कतरनें उपलब्ध कराईं जिनसे इस समुदाय में साम्प्रदायिक राजनीति के उभार का विश्लेषण करने में मदद मिलती है। इस अध्ययन के लिए रोहित जी ने मुझे प्रोत्साहन दिया। उनके नियमित मार्गदर्शन और मेरे प्रति उनके विश्वास से इस रिपोर्ट को तैयार करने में बहुत गहरा बल मिला है। उनके सुझावों से एक राजनीतिक समझदारी विकसित करने में मदद मिली जिसके आधार पर स्थिति की आलोचनात्मक व्याख्या की जा सकती है।

मैं रानू का कृतज्ञ हूं जिन्होंने धीरज से मेरी बातों को सुना और घर पर अथवा यात्राओं के समय रोजमर्रा चर्चाओं के ज़रिए अध्ययन के नतीजों का मूल्यांकन करने में मदद दी। दैनिक जीवन के सरल उदाहरणों के सहारे जटिल मुद्दों की व्याख्या करने की उनकी क्षमता से मुझे धर्म और जाति संबंधी जटिल मसलों की एक साफ नजर विकसित करने में मदद मिली है। रानू की मदद और प्रोत्साहन के बिना यह अध्ययन संभवन नहीं था।

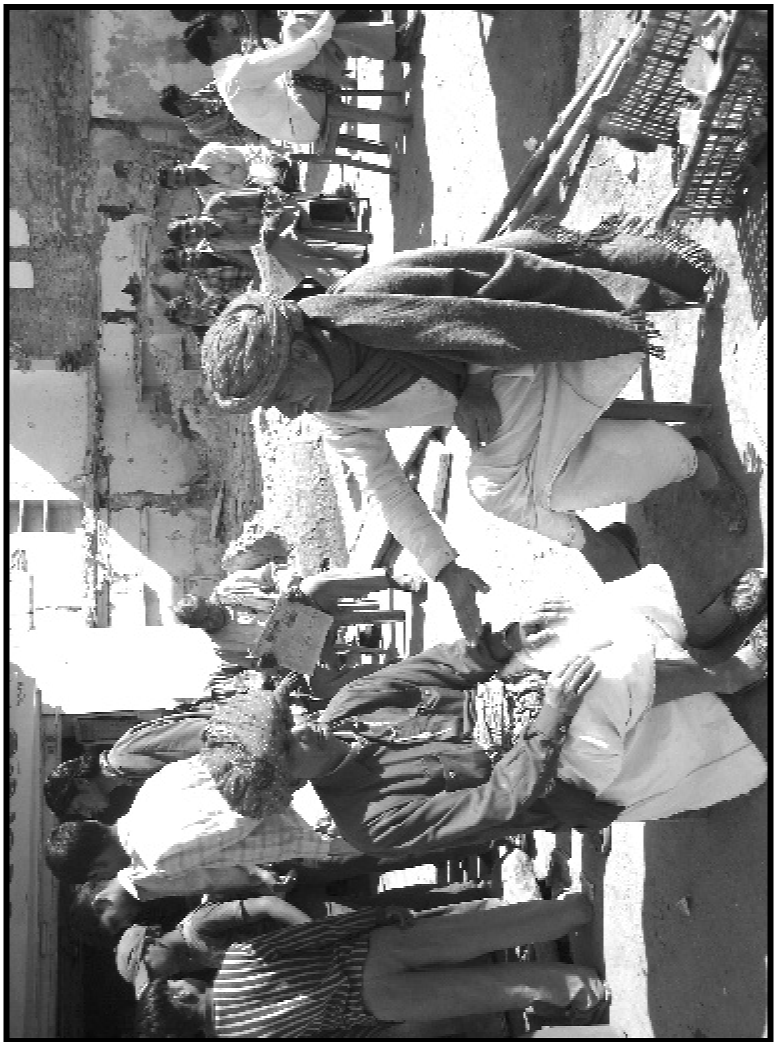

पहचान की तलाश में राजपूत!

“इनमें बिगाड़ आ गया है”, या “इनमें इल्म की कमी है” -- इस तरह के बयान अजमेर और ब्यावर (राजस्थान) के आस-पास रहने वाले चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात समुदाय के समन्वयवादी स्वरूप के बारे में अकसर सुनायी पड़ जाते हैं। हैरानी की बात है कि खुद समुदाय के नेता भी इसी तरह की राय व्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं। चीता समुदाय के एक लड़के ने बताया कि “मेरा नाम रणजीत सिंह है।” इतना सुनते ही माहौल में दबी-सी हंसी तेर जाती है। लेकिन जैसे ही रणजीत सिंह बताता है कि “मैं मुसलमान हूं”, यह दबी-सी हंसी ठहाके में बदल जाती है। यह लड़का अजमेर से बमुश्किल दस किलोमीटर दूर पड़ने वाले अजैसर गांव में रहता है और अपने ही गांव के पठान परिवारों के लिए उपहास का विषय है! यही स्थिति चीता समुदाय के दूसरे लोगों की है जिनकी आबादी इस गांव में 95 प्रतिशत है।

सलीम खान ने अपनी झोंपड़ी के एक कोने में हिंदू देवी-देवताओं और स्थानी राजस्थानी लोक नायकों की तस्वीरें सजायी हुई हैं। एक मुसिलम संत की दरगाह पर भी वह नियमित रूप से माथा टेकने जाते हैं। उन्होंने बताया कि वह मुसलमान हैं लेकिन गांव के बहुत सारे लोगों की तरह उन्हें भी कलमा शाहदत का पता नहीं है। उनके पड़ोसी और चचेरे भाई माधो सिंह न जाने कब से गांव की ईदगाह में ईद की नमाज अदा करते आ रहे हैं। लेकिन वह गांव के बाकी लोगों की तरह होली-दिवाली भी उतने ही उत्साह से मनाते हैं। ‘हिंदू’ और ‘मुसलिम’ की परंपरागत परिभाषाओं की अवहेलना करते ये दिलचस्प लोग चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात नामक समुदाय के सदस्य हैं। इस समुदाय की आबादी तकरीबन 5-6 लाख है। ये लोग राजस्थान के अजमेर जिले में अजमेर और ब्यावर

कस्बों के आस-पास तकरीबन 160 गांवों में फैले हुए हैं।

इस समुदाय के बारे में मेरी उत्सुकता तभी से पैदा हो गई थी जब दो साल पहले अजमेर यात्रा के दौरान मुझे इस समुदाय के बारे में पहली बार पता चलता था। मैंने आनन-फानन में पास ही स्थित अजैसर गांव का दौरा किया और पाया कि यह बात सच थी। इस साल मुझे इस क्षेत्र का विस्तृत दौरा करने का मौका मिला ताकि मैं इस समुदाय को समझ सकूं और इस इलाके के दो मुख्य धर्मों के बारे में उनकी राय जान सकूं। जब मुझे समुदाय में विभिन्न धार्मिक समूहों की भूमिका के बारे में पता चला तो मेरी उत्सुकता और बढ़ने लगी। मैंने तय किया कि इस बारे में एक संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार की जाए ताकि इन जानकारियों और निष्कर्षों का औरों के साथ भी आदान-प्रदान किया जा सके। पाठकों को ध्यान में रखते हुए मैंने इस समुदाय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में भी लिखने का प्रयास किया है ताकि यह समझा जा सके कि समुदाय में धर्म पर आधारित पूर्वाग्रह किन वजहों से फैले हैं। इससे यह समझने में भी मदद मिलेगी कि अब से पहले धर्म के मसले पर इस समुदाय की सोच कैसी रही है।

मेरों का उदय

मेरों के उदय के बारे में दो स्रोतों से सूचना मिल सकती है। ये या तो समुदाय के बड़े बुजुर्ग हैं या भारत में स्वतंत्रता से पहले अंग्रेजों द्वारा लिखे गए दस्तावेज़ हैं। जागा या बही भट्ट कहलाने वाला समुदाय इन गांवों में रहने वाले परिवारों के विस्तृत रिकॉर्ड रखता है। इन रिकॉर्ड्स की लिपि तो देवनागरी से मिलती-जुलती ही है मगर इन रिकॉर्ड्स में पीढ़ी-दर-पीढ़ी जो ब्यौरे दर्ज किए गए हैं उन्हें जगाओं की मदद के बिना नहीं पढ़ा जा सकता। दोनों ही स्रोतों का दावा है कि चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात समुदाय पृथ्वीराज चौहान (ई.1168-1192) के वंशज हैं। मान्यता है कि पृथ्वीराज चौहान के एक बेटे या भतीजे का नाम जोध लखन था। उसने सहदेव नामक महिला से विवाह किया था और इस संबंध से अनहैल और अनूप नामक दो बेटे पैदा हुए। इन लड़कों को शाही हैसियत नहीं मिल पायी क्योंकि वे राजपूत और असावरी मीणा, दो भिन्न समुदायों के मेल से जन्मे थे। आख़िरकार उन्हें अजमेर से दूर एक गांव में जाकर रहना पड़ा।

सहदेव की जाति उजागर हो जाने के बाद जोध लखन की क्या भूमिका रही, इस बारे में ज्यादा जानकारी नहीं मिलती। जोध लखन भी अपने परिवार के साथ चले गए या किले में ही रहते रहे, यह अस्पष्ट है मगर इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता क्योंकि सहदेव और उनके दोनों बेटों को सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा और जंगलों में पनाह लेनी पड़ी। बहरहाल, धीरे-धीरे जंगल में उनकी संख्या व ताकत बढ़ती गई। यह मेरवाड़ा का जंगल था। धीरे-धीरे मेर समुदाय के लोग पुष्कर और अजमेर आने वाले तीर्थ यात्रियों तथा व्यापारियों के लिए एक बड़ा ख़तरा बनने लगे। वे डकैतों के रूप में कुख्यात थे और उनके गांव कभी भी अपने आस-पास की रियासतों को किसी तरह का टैक्स नहीं देते थे। उन का निवास क्षेत्र पहाड़ियों के घेरे में सुरक्षित था जिससे उन्हें आस-पास से गुजरते व्यापारियों पर घात लगा कर हमला बोलने में बड़ी मदद मिलती थी। मेर समुदाय के लोग अपने ख़तरनाक कामों के लिए बदनाम थे। उनकी इसी छवि की वजह से दूसरे समुदायों के भी ऐसे लोग और परिवार इस समुदाय में आते गए जो अपने समुदाय में किसी भी तरह के सामाजिक या धार्मिक बहिष्कार का शिकार बन चुके थे। मेरवाड़ा न केवल निचली जातियों के लोगों के लिए बल्कि ज़रूरतमंद ऊंची जातियों के लोगों के लिए भी एक मंजिल बन गया था। कर्नल डिक्सन लिखते हैं कि गहलौत जाति के दो राजपूत भाइयों ने ई. 1303 में यहीं पनाह ली थी क्योंकि उन्हें दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन गौरी से अपनी जान को ख़तरा था।

कर्नल डिक्सन द्वारा लिखित “स्केच ऑफ मेरवाड़ा” में बताया गया है कि “मेरवाड़ा के नाम से प्रसिद्ध इलाका अरबाला पर्वत शृंखला के एक भाग में फैला हुआ है और ये पहाड़ियां गुजरात से दिल्ली के कुछ किलोमीटर दूर तक फैली हुई हैं। उत्तर में यह इलाका अजमेर तक फैला हुआ है। पूर्व में मेरवाड़ और पश्चिम में मारवाड़ पड़ते हैं। इस इलाके के दक्षिण में मेरवाड़ का पहाड़ी भूभाग है। यह क्षेत्र उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली पर्वत शृंखला के साथ-साथ लंबाई में लगभग सौ मील तक फैला हुआ है। इस भूभाग की चौड़ाई कहीं कम तो कहीं ज्यादा है और आमतौर पर पर्वत शृंखला के संकरेपन से तय होती है। उत्तरी भाग पच्चीस से तीस मील तक चौड़ा है जबकि दक्षिण में यह चौड़ाई केवल कुछ मील रह जाती है।”

चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात लोगों को मेर भी कहा जाता है। यह नाम अंग्रेजों ने मेरवाड़ा के निवासियों को दिया था। चीता-मेहरात समुदाय के अनुसार मूल मेर वास्तव में मौजूदा चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात के उदय से पहले इस इलाके में रहने वाले कबीले थे। चीता-मेहरात समुदाय ने इन लोगों को खदेड़ कर राजस्थान के दक्षिणी इलाके में ढकेल दिया था। इस प्रकार पुराने मेरों की जगह नए मेरों (चीता-मेहरात) ने ले ली थी। मैंने अपनी रिपोर्ट में चीता-मेहरातों को मेर शब्द से ही संबोधित किया है।

मेरों के अलग-अलग गोत्रों का उदय

चीता और बरड़

अनहैल और अनूप/अनब के वंशजों को उनके मिश्रित बल्कि “अशुद्ध खून” की वजह से जाना जाता था। आगे चल कर डकैत की पहचान बन जाने से उनकी स्थिति और उलझ गई। उनकी इस छवि की वजह से उनके समुदाय की लड़कियों के विवाहों में मुश्किलें पैदा होने लगीं। दूसरे समुदायों के लोग मेरों के साथ शादी-ब्याह नहीं करना चाहते थे और हिंदू धर्म में अपनी जाति के भीतर विवाह मान्य नहीं होते। इसका नतीजा ये हुआ कि समुदाय के लोग बालिका शिशुओं को मारने लगे। समुदाय के पुरुषों की शादी या निजी संबंध कभी कोई समस्या नहीं थी क्योंकि वे या तो लड़कियों को अगवा कर लाते थे या दूसरी जातियों पर दवाब डालकर उनकी लड़कियों से शादी कर लेते थे। बाद में मेरों के अत्याचारों से परेशान समुदायों की ताकत बढ़ने या मेरों में नई सोच पैदा हो जाने से अंततः उन्होंने इस अमानवीय परंपरा को खत्म कर दिया है। इस फ़ैसले से मेरों में चीता और बरड़ गोत्रों का विकास हुआ है।

मेर समुदाय के लोगों ने इस जटिल स्थिति के बारे में मिल-जुलकर सर्वसम्मति से फ़ैसला लेने का निर्णय लिया था। फलस्वरूप, इस मसले पर विचार करने के लिए एक विशाल सभा बुलाई गई जिसमें विभिन्न गांवों के मेर मुखियाओं ने हिस्सा लिया। इस ऐतिहासिक सभा की सही-सही तारीख किसी को मालूम नहीं है। यह सभा समुदाय के एक मंदिर में आयोजित की गई थी। प्रचलित मान्यता के अनुसार, जिस समय सभा चल रही थी तभी एक पेड़ की डाली टूटी गई। डाली टूटने से

“चरड़” की आवाज हुई। जिस तरफ की डाली टूटी थी वहां अनहैल के वंशज बैठे थे इसलिए उन्हें इस आवाज के आधार पर चरानाता या “चीता” का नाम दे दिया गया। अनूप के वंशजों को “बरणाता” (स्थानीय भाषा में चरड़ का विलोम) या बरड़ का नाम दिया गया और इस तरह मेरों में दो गोत्र बन गए। शादियों के बारे में आ रही अड़चन को दूर करने के लिए तय किया गया कि मूल रूप से एक गोत्र से उपजे इन दोनों गोत्रों के बीच शादियां की जा सकती हैं। समुदाय ने अपनी लड़कियों को मार देने की परंपरा तो इस सभा के बाद खत्म कर दी मगर डकैती की वजह से समुदाय की जो बदनामी हो रही थी उस पर कुछ नहीं किया जा सका। दोनों गोत्रों के लोग लूटमार के पुराने व्यवसाय में लगे रहे और नौसर घाटी के आस-पास आकर बस गए। बाद में इन दोनों गोत्रों में 24 उपगोत्र पैदा हो गए।

मेहरात

लूटमार करने वाले सभी गोत्रों के बीच एक पेशेवर नजदीकी विकसित हो चुकी थी और ज़रूरत के वक्त वे एक-दूसरे की मदद करते थे। एक बार कहीं जाते हुए अनूप के एक वंशज (बरणाता गोत्र) ने लूटमार करने वाले अपने एक साथी के घर में पनाह ली थी। उस समय घर में कोई पुरुष नहीं था, केवल एक स्त्री थी। जब बाद में इस औरत (जिसका नाम हैवाई पोखरनी था) का पति वापस लौटा तो उसने अपनी औरत को चरित्रहीन कह कर उसे घर से निकाल दिया। इसके बाद यह स्त्री अपना दुख लेकर उस आदमी के घर पहुंची जो उस रात उसके घर पर ठहरने आया था। बीरम नाम के इस व्यक्ति ने उसे अपने घर में रख लिया क्योंकि वह उसकी दुर्गती के लिए खुद को ज़िम्मेदार मान रहा था। इस महिला से उसे दूदा नाम का एक बेटा पैदा हुआ। जब इस नवजात शिशु की नाभि-नाल को मिट्टी में दबाया जा रहा था तभी उसके मां-बाप को मोहरों का थैला मिला और इसी आधार पर उस महिला (दूसरे समुदाय की) से जन्मे बच्चे को मेहरात का नाम दिया गया। इस तरह एक नया गोत्र पैदा हो गया।

काठात और घोड़ात

ये दोनों गोत्र एक साथ विकसित हुए। कहा जाता है कि मेहरात गोत्र के हर राज और गज राज नामक दो भाई दिल्ली में एक बादशाह की सेना में सिपाही थे। एक रात को जब ये दोनों भाई किले में गश्त दे रहे थे तो उसी समय ज़बरदस्त ओलाबारी और बरसात होने लगी। सारे सिपाही छिपने के लिए इधर-उधर भाग गए मगर दोनों भाई मुस्तैदी से डटे रहे। हर राज ने ढाल के सहारे बरसात का मुकाबला किया और गज राज पूरी रात अपने घोड़े पर ही बैठा रहा। जब बादशाह को इन दोनों की वफादारी का पता चला तो उसने हर राज और गज राज को क्रमशः काठा (यानी मजबूत) और घोड़ात (घोड़े के आधार पर) के नाम से नवाज़ा। यहां से काठात और घोड़ात गोत्रों की शुरुआत हुई।

सामासिकता का उदय

मेरों में सामासिक (मिश्रित धार्मिक) परंपराओं के उदय के बारे में कई तरह की जनश्रुतियां और व्याख्याएं प्रचलित हैं। इस समुदाय में इस्लाम की तीन जानी-मानी परंपराओं को स्वीकृति मिली हुई है। ये परंपराएं हैं पुरुषों का खतना, हलाल गोश्त खाना और मुर्दों को दफन करना। समुदाय में सामासिक परंपराऐ कैसे शुरू हुईं, इस बारे में जो कारण प्रचलित हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

नए धर्म का प्रभाव

सूफी मत एक ऐसी उपासना पद्धति है जिसमें पूजा-पाठ के तरीकों पर कोई मतभेद नहीं होता। इस पंथ में अमीर-गरीब, सभी को बराबर जगह दी जाती है। माना जाता है कि पूर्वाग्रहों और बहिष्कारों की समस्या से जूझ रहे मेरों को सूफी पंथ में काफी सम्मान और संतोष मिला। यह मान्यता अजमेर में सूफी पंथ से जुड़े मुसलिम तबके में प्रचलित है। इन लोगों का मानना है कि चीता-मेहरात समुदाय के पुरखे हर राज ने प्रसिद्ध सूफी संत हजरत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती (अजमेर) द्वारा शुरू किए गए पंथ से आकर्षित होकर इस्लाम धर्म अपना लिया था। बताते हैं कि इसी लिए हर राज को पीर हर राज भी कहा जाता है क्योंकि पीर का ओहदा मुसलिम संतों को ही मिलता है।

जबरन धर्मांतरण

मेर समुदाय का सेलार नामक व्यक्ति बदनौर का मुखिया था। किसी बात पर राणा कुम्भा (1433-1468) ने बदनौर पर कब्जा कर लिया था। बदनौर को वापस हासिल करने के लिए सेलार ने आगरा के राजा नौरंग से मदद मांगी। नौरंग ने शर्त रखी कि अगर सेलार उसकी सेना की मदद चाहता है तो पहले उसे इस्लाम कुबूल करना होगा। सेलार किसी भी कीमत पर अपनी पुरानी हैसियत पाना चाहता था इसलिए उसने धर्मांतरण की तीनों बुनियादी शर्तें स्वीकार कर लीं। सेलार को नए धर्म में अपनी आस्था साबित करने के लिए खतना कराना पड़ा और हलाल गोश्त खाना पड़ा। जब उसे पता चला कि राजा ने उसके धर्मांतरण के बारे में सार्वजनिक रूप से ऐलान कर दिया है तो उसे बहुत गुस्सा आया और वह राजा की सेना साथ लिए बिना ही आगरा से लौट गया। बदनौर को वापस पाने की उसकी कोशिश नाकाम रही और उसने अपने साथियों के साथ खुदकुशी कर ली क्योंकि उसकी टुकड़ी राणा की सेना से घिर चुकी थी। सेलार के दूसरे समर्थकों और हर राज ने इस इलाके में मुसलमानों के लिए अनिवार्य मानी जाने वाली तीनों परंपराओं को अपना लिया।

जबरन धर्मांतरण की दूसरी वजह एक सुल्तान (अज्ञात) की तरफ से मेर औरतों पर मंडरा रहे ख़तरे को भी माना जाता है। मान्यता के अनुसार चीता-मेहरात समुदाय के संस्थापकों में से एक, हर राज, को एक 'मुसलिम सुल्तान' ने धमकी दी थी कि या तो वह इस्लाम धर्म कुबूल कर ले नहीं तो उसे मार दिया जाएगा या उसके समुदाय की औरतों के साथ बलात्कार किया जाएगा। बताते हैं कि हर राज ने इस्लाम अपनाने की शर्त तो मान ली मगर पूरी तरह इस्लाम अपनाने की बजाय उसने अपने तथा अपने वंशजों के लिए इस्लाम की केवल तीन चीज़ों -- मर्दों का खतना, मुसलमानों की तरह हलाल का गोश्त खाना और मुर्दों को दफनाना -- को ही कुबूल किया। जनश्रुति के मुताबिक, इसी वजह से चीता-मेहरात समुदाय के ज्यादातर लोग अभी भी इस्लाम की इन्हीं तीन परंपराओं का पालन करते हैं जबकि बाकी हर लिहाज से वे आस-पास की अन्य हिंदू जातियों जैसे ही हैं।

सुरक्षा के लिए धर्मांतरण

इसी कहानी का एक और संस्करण भी प्रचलित है। मान्यता है कि 'मुसलिम सुल्तान' ने हर राज को व्यापारिक टोलियों के साथ लूटपाट छोड़ देने के एवज में एक बड़ी रियासत दी थी। इसकी वजह से हर राज के छः भाई उससे जलने लगे। उनके इस रवैये के कारण हर राज ने इस्लाम धर्म अपना लिया क्योंकि उसे लगा कि मुसलिम सुल्तान उसके सगे भाइयों से बेहतर है। इस्लाम धर्म अपना लेने के बावजूद उसके वंशज चीता-मेहरात समुदाय के लोगों ने इस्लाम के साथ सिर्फ़ नाम मात्र का रिश्ता ही कायम रखा और इस्लाम में प्रचलित केवल उपरोक्त तीन परंपराओं को ही अपनाया।

ज़बरदस्ती धर्मांतरण की इन उपरोक्त व्याख्याओं से यह बात समझ में नहीं आती कि समुदाय पीढ़ियों तक इन परंपराओं का पालन क्यों करता रहा। ज़बरदस्ती केवल तभी तक चल सकती है जब तक कोई ज़बरदस्ती करने वाला मौजूद होता है। ख़तरा मिट जाने के बाद तो दवाब में जीने की कोई वजह नहीं हो सकती। ज़बरदस्ती धर्मांतरण के इन ब्यौरों को हिंदू कट्टरपंथियों द्वारा ही ज्यादा हवा दी जा रही है। सुरक्षा के लिए या किसी नए सहृदय धर्म के आकर्षण की वजह से धर्मांतरण को फिर भी समझा जा सकता है। मेरा मानना है कि मेरवाड़ा में मजबूती से पैर जमा लेने के बाद मेरों को सामाजिक हैसियत और प्रतिष्ठा की चाहत सबसे ज्यादा सता रही थी। मेर समुदाय के लोग शुरू से ही सामाजिक बहिष्कार झेल रहे थे इसलिए वे किसी भी कीमत पर सामाजिक मान्यता चाहते थे। मुसलिम शासकों या अजमेर के ख्वाजा के थोड़े-बहुत प्रोत्साहन से ही उनके टूटे मनोबल को काफी सहारा मिल रहा था। गज राज और हर राज ने दूसरे जाने-माने समुदायों में सामाजिक स्वीकार्यता पाने के लिए ही इस्लाम की उपरोक्त तीनों परंपराओं को अपनाया होगा। घोड़ात समुदाय के लोगों ने तीन पीढ़ियों तक इन परंपराओं का पालन किया और बाद में पुरानी परंपराओं पर लौट गए। इसके विपरीत चीता, मेहरात-काठात लोग अपनी अन्य पुरानी परंपराओं के साथ-साथ इन तीनों परंपराओं का निर्वाह करते रहे।

अंग्रेजों के राज में मेरों की स्थिति

कर्नल सी.जे. डिक्सन द्वारा लिखित "स्केच ऑफ मेरवाड़ा" में बताया गया है कि मेरों की ताकत को तोड़ने के लिए निम्नलिखित असफल कोशिशें की गईं :

1754 -- उदयपुर के राणा ने मेरों के हतून किले पर हमला किया।
1778 -- जोधपुर के राजा बीजी सिंह ने चांग पर हमला किया।
1778 -- रायपुर के ठाकुर अर्जुन सिंह ने कोट-कुराना पर हमला किया।
1790 -- कुंथालिया के ठाकुर ने भाईलान पर हमला किया।
1800-1802 -- अजमेर के सूबेदार शिवाजी नाना ने जाक ओर शामगढ़ के गांवों पर हमला किया।
1807 -- बालेराव ने मेरों पर हमला किया।
1810 -- टोंक के राजा बहादुर और मोहम्मद शाह खान ने झाक पर हमला किया।
1816 -- उदयपुर के राणा भीम सिंह ने बरार पर हमला किया।

मेरों को दो वजहों से निशाना बनाया गया। एक वजह ये थी कि वे अपने आस-पास की रियासतों को लगान या इस्मारान (टैक्स) नहीं देते थे। दूसरी वजह ये थी कि इन लोगों की वजह से किले के आस-पास रहने वाले परिवारों और व्यापारियों के लिए सदा ख़तरा बना रहता था। बल्कि मेर तो हमला न करने के एवज में आस-पास के गांवों और जिलों से वसूली भी किया करते थे। उनकी सफलता का राज उनकी एकता में था न कि किसी के नेतृत्व में। वे नेता नहीं चुनते थे मगर जोधाजी, करनाजी, चीताजी और मेहराजी नामक चार डांगों (गांवों) से उनके संबंध थे। अपनी एकजुटता और मारकाट के दम पर वे अपने हमलावरों को दबा लेते थे। इन्होंने यह दक्षता मेरवाड़ा के नाम से मशहूर अरावली पहाड़ियों के ऊबड़-खाबड़ हालात में अर्जित की थी। आज भी यहां कुछ थानों के अवशेष मिलते हैं जिनको अंग्रेजों ने व्यापारियों की सुरक्षा के लिए बनाया था मगर मेरों को इन थानों से कोई डर नहीं था।

कैप्टेन हॉल, मेजर लॉरी और कैप्टन टॉड ने भी मेरों की ताकत को तोड़ने का प्रयास किया मगर कामयाब नहीं हुए। बाद में

लेफ्टिनेंट कर्नल डब्ल्यू.जी. मैक्सवेल ने हमला करके हतून किले तथा मेरों के दूसरे महत्वपूर्ण सत्ता केंद्रों पर कब्जा कर लिया। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में अंग्रेज टुकड़ियों की विजय के बाद मेरवाड़ा पर मेरवाड़, मारवाड़ और अंग्रेजों का नियंत्रण रहा। आस-पास की रियासतों को नियंत्रित करने के लिए इलाके के गांवों को उनकी वफादारी या अंग्रेजों के लिए सैनिक दृष्टि से महत्व के आधार पर बांट दिया गया। इस इलाके को नौ परगनों में बांटा गया जिनमें से ब्यावर सहित चार परगने ब्रिटिश शासन के तहत थे। अंग्रेज भी मेरों को नियंत्रित करने का महत्व अच्छी तरह जानते थे क्योंकि शहर के इर्द-गिर्द बसे गांवों में इसी समुदाय के लोग थे। उन्होंने अपनी सेना ब्यावर में तैनात की और धीरे-धीरे वहां एक छावनी विकसित कर ली। अंग्रेज इसलिए भी मेरों को नियंत्रित करना चाहते थे क्योंकि वे अपनी समर्थक रियासतों को खुश करना चाहते थे।

मेरवाड़ा अंग्रेजों के शासन के दौरान भी तथाकथित गैरकानूनी और बिरादरी-बदर तत्वों के लिए एक पनाहगार बना रहा। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान तथा उसके पश्चात ब्यावर ज्यादातर राजनीतिक नेताओं के लिए एक महत्वपूर्ण राजनीतिक मैदान था। शामगढ़ किला नानाजी फड़नवीस, तांत्या टोपे, रास बिहारी बोस, चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, मन्मथ नाथ गुप्त, केसरी सिंह बरहट, प्रताप सिंह बरहट, जोरावर सिंह बरहट, ठाकुर गोपाल सिंह खड़वा, विजय सिंह पथिक, अर्जुन लाल सेठी, सेठ दामोदर दास राठी, सेठ घीसू राम जाजोड़िया, स्वामी कुमारानंद, श्याम जी कृष्णवर्मा आदि जाने-माने राजनेताओं की सरगर्मियों का एक मुख्य केंद्र था। इसके अलावा मोहन लाल सुखाड़िया, जय नारायण व्यास और भैरोंसिंह शेखावत जैसे लोगों की राजनीतिक ख्याति में भी इस किले का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

कर्नल डिक्सन के प्रयास

ब्यावर की आधारशिला उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में मौजूदा अजमेरी गेट के पास लेफ्टिनेंट कर्नल सी.जे. डिक्सन द्वारा रखी गई थी। कर्नल डिक्सन 144 मेरवाड़ा रेजीमेंट के कमांडर थे और उन्होंने ही इस शहर को छावनी का दर्जा दिया था। यहां छावनी इसलिए स्थापित की गई

ताकि आस-पास से गुजरने वाले व्यापारियों को सुरक्षा दी जा सके और उन्हें अठून व चांग खां जैसे बदनाम मेरों से सुरक्षित बाजार उपलब्ध कराया जा सके। मेरों को दूसरे समुदायों के नजदीक लाने के लिए ये ज़रूरी था कि मेर समुदाय के लोग आजीविका के लिए सामान्य गतिविधियां और काम-धंधे अपनाएं इसलिए उन्हें खेती-बाड़ी तथा सेना में नौकरी के लिए प्रोत्साहित किया जाने लगा। अंग्रेजों ने मेरों के लड़ाकू व्यवहार को ध्यान में रखते हुए मेर युवाओं को सेना में भर्ती करना शुरू कर दिया। कर्नल डिक्सन ने शहर के आस-पास सक्रिय बदनाम कबीलों को मुख्यधारा में लाने के लिए कई बार प्रयास किए। उन्होंने इलाके की एक महिला से विवाह किया और तीज व धुलण्डी नामक दो महत्वपूर्ण मेले शुरू किए। कर्नल डिक्सन की कब्र रेलवे क्रॉसिंग के पास बने कब्रिस्तान में है जबकि बेगम साहिबा यानी उनकी पत्नी की कब्र ब्यावर स्थिति अजमेरी गेट के पास रामद्वारा के सामने है।

इलाके की अर्थव्यवस्था

इस अध्ययन में आर्थिक दस्तावेज़ीकरण के लिए ब्यावर को केंद्र में रखा गया है क्योंकि यह विभिन्न आर्थिक गतिविधियों का पुराना केंद्र रहा है। दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि इस शहर के भीतर और उसके आसपास मेरों की बहुत बड़ी आबादी रहती है। अंग्रेजों ने ब्यावर को एक आर्थिक केंद्र के रूप में विकसित किया था। उसे राजस्थान का मेनचेस्टर भी कहा जाता था क्योंकि यहां तीन कपड़ा मिल और कपास की धुनाई के कारखाने थे। यहां बीड़ी बनाने वाली बड़ी इकाइयां थी जिनमें कई महिलाओं को रोजगार मिलता था। अब ये फैक्टरियां बंद हो चुकी हैं और उनकी जगह रिहायशी मकान बना दिए गए हैं। महादेव जी की छतरी पर हर रोज हजारों रुपए का सट्टा लगता था। व्यवसाय और व्यापार की दृष्टि से ब्यावर राजस्थान के मुख्य शहरों में से था। पूरे भारत में फाजिल्का (पंजाब) के बाद ब्यावर ही ऊन के व्यापार का सबसे बड़ा केंद्र था। राजस्थान के विभिन्न भागों में ब्यावर से कपड़ा, कपास, बीड़ी, सुनहरी धागे, अभ्रक (जिप्सम) और सुरमे आदि की सप्लाई होती थी। कपास का निर्यात भी किया जाता था इसलिए कई विदेशी निजी कंपनियों ने भी शहर में अपने दफ्तर खोल लिए थे। ब्यावर की इन विशेषताओं के कारण

ही यह भारत के मुख्य शहरों में शुमार होने लगा था।

शहर की व्यावसायिक हैसियत अभी भी बरकरार है। ब्यावर के इर्द-गिर्द सीमेंट की जालियों, एस्बेटॉस के पाइपों, पत्थर और टाईलों, छपाई, रंगाई, हथकरघे, पावरलूम, प्लास्टिक पेपर आदि की 200 से ज्यादा फैक्टरियां हैं। कहने का मतलब यह है कि यहां अभी भी बहुत सारे छोटे और मझोले उद्यम चल रहे हैं। शहर से सात किलोमीटर दूर मसूदा रोड पर श्री सीमेंट लिमिटेड नामक एक विशाल सीमेंट कारखाना है। इस कारखाने में सालाना 63.39 लाख टन (2007-08) से ज्यादा सीमेंट बनता है और उससे राज्य सरकार को करोड़ों रुपए का राजस्व मिलता है। शहर में विभिन्न बड़े बैंक हैं जो व्यवसायिक उद्यमों को ऋण देते हैं। ब्यावर दिल्ली-अहमदाबाद को जोड़ने वाली पश्चिमी रेलवे की मीटर गेज वाली लाइन से जुड़ा हुआ है। ब्यावर से जयपुर, जोधपुर और उदयपुर जैसे मुख्य शहर लगभग समान दूरी पर हैं और ब्यावर राष्ट्रीय राजमार्ग 8 से जुड़ा हुआ है। दरअसल ब्यावर नगर निगम राजस्थान में सबसे पुरानी नगर पालिका है।

इलाके की वर्तमान अर्थव्यवस्था या तो मौजूदा छोटे और मझोले उद्यमों के लिए मजदूरों की आपूर्ति या व्यापार की दृष्टि से चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात और रावत समुदायों पर गहरे तौर पर आश्रित है। प्रत्येक परिवार का मुख्य खर्चा शादी, प्रसव, मौत और तीज-त्योहारों पर ही होता है। प्रत्येक परिवार भोजन, दवाइयों और त्योहारों पर सलाना 40 हजार रुपए से ज्यादा खर्च करता है और जीवन में कम से कम एक बार विवाह, जन्म और मृत्यु संबंधी समारोह पर एक लाख रुपए से ज्यादा खर्च कर देता है। यह मुख्य वजह है जिसके चलते इलाके में सक्रिय साम्प्रदायिक ताकतों की कोशिशें शहर में सफल नहीं हो पा रही हैं। पिछले ही साल स्थानीय बनियों ने वीएचपी के तीन दिवसीय ब्यावर बंद की कोशिश को नाकाम कर दिया था।

ज्यादातर मेर गरीब हैं क्योंकि उनके पास आजीविका के बहुत सीमित साधन हैं। उनमें से ज्यादातर छोटे किसान हैं जो साल में केवल एक फसल ले पाते हैं और वह भी मानसून पर निर्भर रहती है। प्रत्येक परिवार के सदस्य आस-पास के शहरों में दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करते हैं। एक लाख से ज्यादा परिवार दिल्ली व कोटा जैसे बड़े शहरों में जा चुके हैं। अकेले दिल्ली में ही यहां के लगभग 50,000 परिवार हैं। ये

लोग लगातार कर्ज में दबे रहते हैं क्योंकि अपने सलाना खर्चों को पूरा करने के लिए उन्हें महाजनों से पैसा लेना पड़ता है। भारतीय सेना या पश्चिमी एशिया में नौकरियां पा लेने वाले कुछ परिवारों की आर्थिक स्थिति बेहतर है।

सामासिकता के लिए ख़तरा

मेर समुदाय के लोग कालका माता, नागपाल देव, नंदराय माता, आशापुरी देवी, वीर नेजाजी महाराज, अजयपाल जोगी, रामा पीर आदि विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इनके गांवों में मस्जिदें भी बनी हुई हैं। वे सभी भगवानों और देवी-देवताओं में पूरी आस्था रखते हैं। प्राथना के लिए वे किसी भी मंदिर-मस्जिद के सामने या तो माथा टेकते हैं या बस हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। वे पूजा या नमाज के लिए ज़रूरी रस्मों से न तो वाकिफ हैं और न ही उन्हें सीखना चाहते हैं। धर्म के साथ उनका संबंध बहुत सतही है और वह मुख्य रूप से ईद, होली, दीवाली आदि त्योहारों तक ही सीमित रहता है। त्योहारों के दौरान ये लोग सप्ताह भर जश्न मनाते हैं। ज्यादातर पुरुष लाल पगड़ी और धोती पहनते हैं। औरतें घाघरा-चोली पहनती हैं। ये लोग मेरवाड़ी बोली बोलते हैं जोकि मेवाड़ी और मारवाड़ी बोलियों के मिलने से बनी है। उनके सामाजिक व्यवहार तथा खान-पान की आदतों में मुश्किल से ही कोई फ़र्क़ दिखाई देता है।

सामासिक समुदायों को विभिन्न धार्मिक समूह अपने-अपने धर्मों के प्रचार-प्रसार के लिए एक बढ़िया मैदान मानते हैं। यहां हर धर्म के नेता दावा करते हैं कि दूसरे देशों से पैसा आ रहा है। वीएचपी का आरोप है कि पश्चिम एशिया के मुसलिम देश मेरों का इस्लामीकरण करने के लिए जम कर पैसा भेज रहे हैं। तबलीगी जमात और अन्य मुसलिम संगठनों का दावा है कि अमेरिका में बैठे अनिवासी भारतीय मेरों का हिंदूकरण करने के लिए जम कर डॉलर भेज रहे हैं। रावत समुदाय रावतों के बीच ईसाई धर्म के प्रसार के लिए यूरोपियों देशों से आ रहे यूरो से परेशान है। उनका आरोप है कि चर्च और स्वैच्छिक संगठन लोगों को ईसाई बनाने का काम कर रहे हैं। चर्च ऑफ नॉर्थ इंडिया (सीएनआई) और चर्च ऑफ साउथ इंडिया (सीएसआई) रावत बहुल कुछ गांवों में सक्रिय हैं हालांकि दूसरे दोनों

मुख्य धर्मों के मुकाबले इनकी स्थिति लगभग नगण्य है। समुदाय के नेता धार्मिक पहचानों के आधार पर धार्मिक राजनीति को हवा देने के लिए एक-दूसरे पर आरोप मढ़ रहे हैं। वीएचपी से नजदीकी रखने वाले नेता मानते हैं कि जमात और चर्च के लोग जनता को पैसे देकर उन्हें चर्च में आने या दाढ़ी, टोपी आदि रखने के लिए फुसला रहे हैं। इसके विपरीत मेरों के इस्लामीकरण के हिमायती नेताओं का आरोप है कि वीएचपी के लोग हिंदुत्ववादी प्रतीकों को पहनने या हिंदू परंपराओं के अनुसार शादी-ब्याह करने वाले परिवारों को पैसे दे रहे हैं। इस इलाके में सक्रिय धार्मिक समूह ऐसे मेर परिवारों पर ज्यादा जोर दे रहे हैं जो शुद्धतावादी बन गए हैं यानी जिन्होंने किसी एक धर्म को अपना लिया है परंतु अभी भी पुरानी पहचानों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। उदाहरण के लिए, रामा काठात और रहमतुल्ला एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। उनसे मेरी मुलाकात इकरा पब्लिक स्कूल में हुई और देखने में वह मुसलमान लगते हैं मगर उन्हें अपने सामासिक इतिहास पर उतना ही गर्व है जितना कि मुसलमान होने पर।

यद्यपि अजमेर और ब्यावर शहरों में भी अन्य शहरी संस्कृतियों की तरह विभिन्न धर्मों और आस्थाओं के लोग रहते हैं परंतु शहरों के आस-पास के इलाके में मेहरात, काठात और चीता ही ज्यादा हैं। ये लोग किसी भी मौजूदा प्रभुत्वशाली धर्म के मुकाबले अपने पुरखों से मिले और परंपरागत सामाजिक-सांस्कृतिक तौर-तरीकों को ज्यादा महत्व देते हैं।

हिंदुत्व का असर

चीता-मेहरात समुदाय की पहचान न तो 'हिंदू' के रूप में है और न कि 'मुसलिम' के रूप में। इस समुदाय में इन दोनों का अंश दिखाई देता है। बीसवीं सदी की शुरुआत से ही चीता-मेहरातों की इस पहचान को लगातार चुनौतियां दी जाती रही हैं। 1920 के दशक में आर्य समाज के प्रचारकों ने चीता-मेहरात समुदायों को हिंदू धर्म के अंतर्गत लाने का प्रयास किया था जिन्हें न तो 'हिंदू' कहा जा सकता था और न ही 'मुसलिम'। शक्तिशाली राजपूत सभा ने आह्वान किया था कि चीता-मेहरात समुदाय के लोग अपने इस्लामिक तौर-तरीके छोड़कर हिंदू बन जाएं। कहते हैं कि उस समय चीता-मेहरात समुदाय के कुछ लोगों ने खुद को औपचारिक रूप से हिंदू घोषित भी कर दिया था।

प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में इस आशय की खबरें बीच-बीच में आती रहीं हैं कि फलां मुसलिम समुदाय ने सामूहिक रूप से हिंदू धर्म स्वीकार कर लिया है। इस तरह की खबरों के चलते विभिन्न धार्मिक नेता मेरों और उनकी सामासिक परंपराओं के बारे में काफी दिलचस्पी लेने लगे हैं। 1980 से 1990 का दशक धार्मिक उथल-पुथल के लिहाज से एक महत्वपूर्ण दौर था जब विभिन्न राजनीतिक दलों से जुड़े धार्मिक समूह इस इलाके में सक्रिय हो गए थे। क्योंकि ब्यावर शुरुआत से ही राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र रहा है इसलिए विभिन्न राजनीतिक गतिविधियों को भी यहां खूब हवा मिली है। 1991 में वीएचपी ने देवी आशापूर्णी का एक मंदिर और स्कूल बनवाया था। 2001-02 के दौरान वीएचपी द्वारा "राजस्थान चीता मेहरात मागरा मेरवाड़ा महासभा" का पंजीकरण कराया गया। वीएचपी ने यह कदम 1949 से मेरों के मसलों पर सक्रिय पुरानी संस्था "राजस्थान चीता-मेहरात (काठात) महासभा" की गतिविधियों का जवाब देने के लिए उठाया था।

मेर समुदाय के लोग सदियों से मजारों और मंदिरों में निरपेक्ष भाव से जाते रहे हैं। उनकी इसी सामासिक सोच की वजह से उन्हें काफी बदनामी भी झेलनी पड़ी। वे वीएचपी की कई दुर्भावानापूर्ण चालाकियों के शिकार बन चुके हैं। उदाहरण के लिए, इस समुदाय में राम देवड़ा का प्रसाद बांटा गया और इस अवसर पर खींचे गए फोटो प्रिंट मीडिया में छपवाकर यह प्रचार कर दिया गया कि इन लोगों ने अपना धर्म बदल लिया है। इसी तरह, भिन्न रस्मों को मानने वाले जोड़ों के विवाह और पुनर्विवाह जैसे कई समारोहों में वीएचपी के लोगों की उपस्थिति को भी धर्मांतरण की खबर के रूप में प्रसारित किया गया है। समुदाय का केवल एक छोटा सा तबका ही वीएचपी द्वारा कराए जा रहे आयोजनों/रस्मों से अलग रह पा रहा है। यह ऐसा तबका है जिसके पास या तो राजनीतिक समझ आ चुकी है या जो दूसरे राजनीतक समूहों के ज्यादा नजदीक है। ज्यादातर परिवार वीएचपी की पुनर्धर्मांतरण राजनीति से तटस्थ हैं। लेकिन उन्हें किसी धार्मिक रस्म में हिस्सा न लेने के कारण ईश्वर के कोप का भय भी रहता है। लिहाज़ा, वीएचपी बार-बार इस समुदाय को प्रभावित करने का प्रयास करती रही है।

वीएचपी ने ब्यावर को अपनी गतिविधियों का केंद्र इसलिए चुना है

क्योंकि यह शहर शुरू से ही एक राजनीतिक केंद्र रहा है तथा पुरानी महासभा भी यहीं से ही सक्रिय थी। वीएचपी के नेता इस इलाके में मुसलिम संगठनों की बढ़त से परेशान हैं। अजमेर के कुछ हिस्सों, खासतौर से ब्यावर के आस-पास पड़ने वाली मेहरात पट्टी में विश्व हिंदू परिषद् बहुत सारे धर्मांतरण करा चुकी है। धर्मांतरण करने वाले इन लोगों में से बहुत सारे गोला या धरमपूत उपजाति के सदस्य हैं जो परंपरागत रूप से मेहरातों के नौकर होते थे और मेहरात उन्हें तिरस्कारपूर्वक देखते थे। अब कुछ अन्य चीता और मेहरात लोग भी परिषद् के प्रभाव में आ चुके हैं। परिषद् ने अपनी सोच को फैलाने के लिए इलाके में कई मंदिर, स्कूल और क्लीनिक खोल दिए हैं जिससे यहां के गरीब इन संस्थानों में आने लगें। परिषद् का दावा है कि चीता-मेहरात लोग पृथ्वीराज चौहान के वंशज हैं तथा उनके पुरखों को जबरन इस्लाम धर्म अपनाने के लिए बाध्य किया गया था। चीता-मेहरात समुदाय के कुछ लोगों को लगता है कि सामाजिक रूप से ऊंची हैसियत पाने के लिए उन्हें स्पष्ट रूप से हिंदू, खासतौर से राजपूत पहचान अपनानी चाहिए और हिंदू समुदाय में घुलने-मिलने की कोशिश करनी चाहिए।

शुद्धि समारोहों के ज़रिए चीता-मेहरातों के सामूहिक धर्मांतरण की जो खबरें समय-समय पर प्रेस में आती रहती हैं उन पर भारी विवाद रहता है। हिंदुत्व के हिमायती इन घटनाओं को अपनी शानदार सफलता मानते हैं जबकि अपनी सदियों पुरानी पहचान को बनाए रखने के इच्छुक चीता-मेहरात लोग इसे समुदाय का मनोबल तोड़ने के लिए की गई सस्ती चालबाजी बताते हैं। हिंदू धर्म अपना लेने (या परिषद् के अनुसार हिंदुत्व में 'घर वापसी') के प्रति समुदाय के बड़े हिस्से में गहरा विरोध दिखाई देता है क्योंकि लोगों को लगता है कि इससे न केवल वे अपने पूर्वज हर राज के 'वादे' की अवहेलना करेंगे बल्कि एक कारण यह भी है कि अगर वे हिंदू बन जाते हैं तब भी दूसरे हिंदू उनके साथ रोटी-बेटी के रिश्ते बनाने वाले नहीं हैं क्योंकि वे उन्हें मुसलिम अतीत की वजह से 'दूषित' ही मानते रहेंगे। लिहाज़ा, समुदाय का बहुत बड़ा हिस्सा एक 'मुसलिम सुल्तान' को उनके बड़ेरे (पूर्वज) हर राज या काठात दादा द्वारा दिए गए वादे का हवाला देते हुए इस तरह के मंसूबों में साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें लगता है कि उनके पुरखों द्वारा अपनाई गई इस्लामिक

परंपराओं को छोड़ देने का फ़ैसला पुरखों की आत्मा को चोट पहुंचाएगा।

मेरों के बीच हिंदू दक्षिणपंथी ताकतों की गतिविधियों ने भारत को एक हिंदू राष्ट्र में तब्दील कर देने की उनकी पुरानी मंशा पूरी तरह उजागर कर दी है। जो लोग अन्य धार्मिक समूहों की धर्मांधता के जवाब में हिंदू दक्षिणपंथी ताकतों की गतिविधियों को सही मानते हैं उन्हें अपनी राय पर फिर से सोचना चाहिए। ब्यावर में वीएचपी का नेतृत्व मेरों के सामासिक तौर-तरीकों से खुश नहीं है और मेरों के पुनःधर्मांतरण पर आमादा है।

इस्लामिक प्रभाव

इस इलाके में सक्रिय इस्लामिक संगठनों, खासतौर से जमियत उल-उलेमा-ए-हिंद, तबलीगी जमात और हैदराबाद से संचालित तामीर-ए-मिल्लत, ने बहुत सारे मदरसे और मस्जिदें स्थापित की हैं। इन कोशिशों के स्पष्ट परिणाम दिखाई देने लगे हैं। यहां तक कि इन संगठनों के आलोचक भी स्वीकार करते हैं कि पिछले दो दशकों के दौरान हिंदू संगठनों तथा शासन के विरोध के बावजूद समुदाय का काफी इस्लामीकरण हुआ है।

धर्मांतरण की कोशिशें समुदाय द्वारा इस्लाम की तीन परंपराओं को अपना लेने से फौरन बाद से ही शुरू हो गई थीं। मुसलिम शासकों ने प्रत्येक गांव में मस्जिद बनवा दी थी और एक साई (शाह) परिवार को तैनात कर दिया था। साई आमतौर पर इस्लाम के अनुयायी बरेलवी धड़े के मदार सिलसिले से संबद्ध रहे हैं। ये साई या फकीर समुदाय में आसानी से घुल-मिल गए थे क्योंकि सामासिक परंपराओं के प्रति उनका रुझान काफी लचीला था। इसी कारण धर्म प्रचारक की उनकी भूमिका जानवरों को कटवाने और मृतकों के कफन-दफन जैसी रस्मों तक सीमित रह गई थी। मेर परिवारों से अनाज और आटा वगैरह दान लेने की वजह से उनको सम्मान की नजर से भी नहीं देखा जाता था। 1980 के दशक में दूसरे मौलवियों के आ जाने की वजह से सामुदायकि रस्मों में उनकी सदियों पुरानी भूमिका और भी सीमित रह गई है। नए मौलवी इस्लाम के देवबंदी धड़े से संबंधित हैं।

एक चीता गांव में अपने अनुभवों को याद करते हुए एक मौलवी ने बताया कि “मुझे एक त्योहार के दौरान देवता के सामने बकरी हलाल

करने पर मजबूर किया गया। हलाल के बाद मुझे गोश्त खाने के लिए कहा गया जिसे मैंने नहीं माना। इसके बाद मुझे गांव से निकाल दिया गया।" एक और मौलवी ने बताया कि उसे माइक्रोफोन पर फ़ाजिर अज़ान (नमाज के लिए सवेरे की घोषणा) देने से रोक दिया गया क्योंकि इससे मस्जिद के आस-पास रहने वाले परिवारों की नींद में खलल पड़ता था। इन दोनों उदाहरणों से पता चलता है कि नए मौलवियों का रास्ता आसान नहीं रहा है। ये तब की बात है जब वीएचपी इन गांवों में काफी सक्रिय थी। शुरुआत में तो वीएचपी नए मौलवियों के धार्मिक पूर्वाग्रहों के बारे में अपना प्रचार करने में सफल रही मगर 1990 के बाद अजमेर के चीता गांवों में उसकी सरगर्मियां जारी नहीं रह पाई क्योंकि लोगों को वीएचपी के मंसूबे समझ में आने लगे थे। गांव में रहने वाले मौलवियों को काफी मुश्किलों को सामना करना पड़ता था पर अब उनकी जिंदगी तुलनात्मक रूप से आसान हो गई है। वे इस बात से दुखी हैं कि उनके कठोर परिश्रम से उन्हें कुछ भी फायदा नहीं हो रहा है। मस्जिदों में चलाए जा रहे मक्तबों में बहुत थोड़े बच्चे आते हैं। मौलवियों के साथ भी मेरों के संबंध निकाह, खतने, हलाल और दफन जैसी रस्मों तक ही सीमित है। लोग सिर्फ़ ईद या कभी-कभार जुमे की नमाज के लिए ही मस्जिद में जाते हैं। अजमेर चीता समुदाय का इलाका है और ये लोग समन्वयवादी परंपरा के हैं। लेकिन बदरखानी परिवारों ने इस्लाम के लिए अपने दरवाजे खोल दिए हैं।

बहुत सारे चीता-मेहरातों के लिए इस्लामीकरण का रास्ता बेहतर सामाजिक हैसियत की ओर बढ़ने का एक साधन है। परंतु जिन गांवों में मस्जिदें और मदरसे खुल गए हैं और जहां पर चीता-मेहरात समुदाय के लोग खुद को बेझिझक 'मुसलिम' मानने लगे हैं वहां भी पुरानी परंपराएं खत्म नहीं हो रही हैं। शराब बनाना और पीना बड़े पैमाने पर प्रचलित है। ऐसी ही स्थिति बाल-विवाहों की हैं। रिश्ते के लिए ज़बरदस्ती पर आधारित नाता-प्रथा (औरतों की कीमत आंकना) और मृत्यु भेज भी समुदाय में खूब प्रचलित है जिनसे बचने की ज़रूरत है। इस्लामिक परंपराओं से निकटता रखने वाले नेता ऐसी सामाजिक कुरीतियों को खत्म करने के लिए लगातार प्रयास कर रहे हैं। इसमें उन्हें कुछ सफलता भी मिली है क्योंकि शराबखोरी पर रोक

के लिए नैतिक उपदेशों के मुकाबले धार्मिक उपदेशों में कहीं ज्यादा वजन होता है। विडंबना यह है कि फिलहाल यह नेतृत्व धार्मिक पहचान के संघर्ष में उलझा हुआ है और उसने भी समुदाय की सामाजिक एवं आर्थिक तरक्की के लिए खास कुछ नहीं किया है।

ज्यादातर चीता-मेहरात लोग जमात द्वारा आयोजित इज्तिमा (धार्मिक चर्चा) में नियमित रूप से हिस्सा लेते हैं। धार्मिक उत्सवों में हिस्सेदारी के प्रति उनका खुलापन उनके परंपरागत विश्वासों का हिस्सा है। उनकी इसी सहभागिता से जमात और तबलीग के कार्यकर्ताओं की उम्मीदें जिंदा रहती हैं। मेरों के लिए इज्तिमा में हिस्सेदारी मुख्य रूप से सामाजिक मेल-जोल और मन बहलाव का साधन है। अक्सर होने वाले इज्तिमा कार्यक्रमों में उन्हें पगड़ी और धोती के आधार पर बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। विभिन्न समूहों द्वारा आयोजित किए जाने वाले धार्मिक कार्यक्रमों में उनकी हिस्सेदारियों के बावजूद वे अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। संभवतः उनके जाति आधारित गैर-लचीलेपन से उन्हें अपनी सामासिक पहचानें बनाए रखने में मदद मिल रही है।

राजस्थान चीता-मेहरात (काठात) महासभा समुदाय की सामाजिक-आर्थिक उन्नति से जुड़े मसलों पर काम कर रही है। फिलहाल यह संगठन समुदाय के ऐसे नेताओं के हाथ में है जो समुदाय के इस्लामिक शुद्धिकरण के समर्थक हैं। यह नेतृत्व महासभा के नाम में से मेहरात शब्द को हटाने पर भी विचार कर रहा है क्योंकि मेहरातों की धार्मिक परंपराओं में उन्हें भ्रम की गुजाइंश दिखाई देती है। काठातों में धार्मिक कट्टरता का विकास एक अजीब परिघटना है जो 1980 के दशक से काफी मुखर रूप में सामने आ रही है। स्थानीय लोग इसके लिए वीएचपी को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। चीता-मेहरात समुदाय के परावर्तन (मूल धर्म में लौटने) पर केंद्रित निहित स्वार्थी कोशिशों की वजह से इस्लामिक संगठनों को भी समुदाय के “नाजुक” स्वरूप पर गौर देने की ज़रूरत महसूस हुई है।

ईसाई प्रभाव

किसी भी नए या पुराने धर्म को ऐसे समुदायों में खासी लोकप्रियता

मिलती है जो सामाजिक-आर्थिक रूप से मजबूत नहीं होते। मेर भी इस नियम का अपवाद नहीं हैं। देश के दो प्रमुख धर्मों के प्रतिनिधि मेरों में अपने लिए बढ़िया संभावनाएं देख रहे हैं। ईसाई धर्म प्रचारक भी इस होड़ में पीछे छूटना नहीं चाहते। चीता-मेहरात-काठात-घोड़ात समुदाय में बहुत ज्यादा उम्मीद दिखाई न देने की वजह से उन्होंने समुदाय के सबसे दबे-कुचले तबकों पर ध्यान केंद्रित कर दिया है। पीछे उल्लिखित गोला या धरमपूत जैसी जातियां मेरों की गुलाम रही हैं। ये लोग निचली जातियों से थे जिन्हें भारतीय गणराज्य की स्थापना के बाद गुलामी से छुटकारा मिला था। लिहाज़ा, मेरों में धार्मिक ध्रुवीकरण साफ देखा जा सकता है। यह धर्म प्रचारकों को यह समुदाय इतना आकर्षक दिखाई दे रहा है कि अहमदिया पंथ (इस्लाम का अल्पज्ञात और हाशियाई हिस्सा) भी मेरों में अपनी किस्मत आजमाने आ पहुंचा है जबकि यह पंथ भारत में भी अपने पैर नहीं जमा पा रहा है। इन कोशिशों के चलते मेरों की पगड़ी, धोती और घाघरा-चोली जैसे जाति आधारित प्रतीकों के स्थान पर टोपी, दाढ़ी, तिलक, केसरिया दुपट्टे और महिलाओं के लिए लंबे वस्त्रों का चलन बढ़ रहा है।

महिलाओं पर असर

हमारी चर्चा के दौरान गरमा-गरम बहस में उलझे दो लोगों को शांत कराने के लिए शायर चाचा नामक एक बुजुर्ग ने कहा कि "औरतों का कोई धर्म नहीं होता, फिर भला तुम अलग-अलग धर्मों को लेकर क्यों बहस कर रहे हो।" चाचा अपनी बात समाप्त करते हुए कहते हैं "उनका कोई धर्म नहीं होता और वे इस बात बहस भी नहीं करतीं। उनसे कुछ सीखो।" महिलाएं उत्पीड़ितों में भी सबसे ज्यादा उत्पीड़ित हैं और किसी भी उत्पीड़ित समुदाय में वे सबसे कमजोर होती हैं। मेर महिलाएं भी समुदाय के सामाजिक-धार्मिक उत्थान की कोशिशों के दुष्परिणाम भोग रही हैं। उन्हें स्थानीय मेलों में जाने या कई ऐसी गतिविधियां करने से रोक दिया गया है जो अब तक वे स्वतंत्र रूप से किया करती थीं। उनकी आजादी में कमी आ रही है। ये बंदिशें राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के दिनों में ही शुरू हो गई थी और अभी भी उन पर सबसे कम ध्यान दिया जा रहा है। मोहम्मद अली मेमोरियल ट्रस्ट ने 1932 में ब्यावर में मेर समुदाय

के बच्चों के लिए मोहम्मद अली मेमोरियल हायर सैकेंडरी स्कूल खोला था जिसमें लड़कों के लिए आवासीय सुविधा भी उपलब्ध है। इस स्कूल में लड़कियों के लिए कोई छात्रावास नहीं है और कोई इस बारे में सोचना भी नहीं चाहता। महासभा की बैठकों में औरतें कभी हिस्सा नहीं लेतीं। यहां तक कि नेताओं की पत्नियां भी सभाओं में नहीं आतीं। वैसे तो दुनिया के सभी समुदायों के लिए जेंडर समता एक कठिन मुद्दा है मगर मेरों के लिए फिलहाल यह सवाल ही नहीं है क्योंकि उनके सामने और भी बड़े मुद्दे मुंह बाए खड़े हैं।

महिलाएं ज़्यादातर समुदायों की परंपरागत रस्मों का निर्वाह करती हैं। मेरों में भी महिलाओं की यही स्थिति है। फिलहाल वे सामासिकता की पुरानी पररंपरा के अनुसार ही चल रही हैं। परंतु अब उन पर अपने परिवारों के ऐसे पुरुषों की तरफ से भारी दवाब पड़ रहा है जो शुद्धतावादी नज़रिए से सोचने लगे हैं और महिलाओं को पुराने तौर-तरीके छोड़ने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

मेरों में विवाह

65 साल के नसीब खान ने हाल ही में अपने बेटे प्रकाश सिंह की शादी राम सिंह और रेशमा की बेटी सीता के साथ तय की है। तीन महीने पहले हेमंत सिंह की बेटी देवी का निकाह लक्ष्मण सिंह के साथ हुआ था। उनका निकाह एक मुसलिम मौलवी ने पढ़ा था। नसीब सिंह के बड़े बेटे रोशन ने मुसलमानों की तरह निकाह किया था जबकि उनके छोटे बेटे इकबाल की शादी हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुई थी। मेरों के समन्वयवादी आचरण को देखते हुए इसमें कुछ भी अजीब दिखाई नहीं देता। परंतु क्या इस तरह की घटनाएं अभी भी सामान्य बात हैं या समुदाय के शुद्धतावादी लोग उन पर सवाल खड़ा करने लगे हैं? यह समझने के लिए पहले हमें इलाके के आधुनिक इतिहास की मदद से समुदाय के मौजूदा व्यवहारों का अध्ययन करना होगा।

फिलहाल शादियां चीता और मेहरात (जिन्हें काठात भी कहा जाता है) समुदायों के बीच ही संभव हैं क्योंकि ये समुदाय सामासिक परंपराओं को मानते हैं। इससे पहले चीता-मेहरात-काठात जैसे समन्वयवादी समुदायों की शादियां हिंदू समुदाय यानी रावत तथा पठान, सैयद, शेख

और खादिम जैसे मुसलिम समुदायों के साथ भी सामान्य रूप से हो जाती थीं। इन मामलों में भी इक्का-दुक्का घटनाओं को छोड़कर प्रायः लड़कियों की अदला-बदली नहीं होती थी। मेर रावत समुदाय की लड़कियों से शादी करते थे और उपरोक्त मुसलिम समुदायों में अपनी लड़कियों को ब्याहते थे। इस परंपरा के नष्ट हो जाने की तीन मुख्य वजहें प्रचलित हैं।

ब्रह्मो समाज का उदय

अजमेर में ब्रह्मो समाज का प्रसार बीसवीं सदी की शुरुआत में हुआ था। यह स्वतंत्रता संघर्ष का बहुत संवदेनशील दौर था। इस दौरान रावतों को अपनी बेटियों की मौत के बाद उनकी दुर्दशा से परेशानी महसूस होने लगी थी (मेर परंपराओं के अनुसार इन लड़कियों को मरने के बाद दफना दिया जाता था)। इसके अलावा रावत समुदाय के लोग मेरों की लड़कियों से शादी की भी उम्मीद करने लगे थे। जब मेरों ने उनकी इच्छा ठुकरा दी तो सदियों पुरानी यह परंपरा खत्म हो गई। रावतों की यह चिंता उचित ही प्रतीत होती है क्योंकि यह संबंध केवल एकतरफा ढंग से ही चला आ रहा था। परंतु मेरों को लगता था कि उनकी जाति रावतों से ऊपर है इसलिए वे रावतों में अपनी बेटियां देने को तैयार नहीं थे।

रावतों का अपमान

जनश्रुति है कि रावत परिवार की एक लड़की का विवाह एक ऐसे मेर परिवार में हुआ था जो मोची का काम करता था। शादी के बाद लड़की के मां-बाप ने देखा कि उनकी बेटी बाजार में बैठ कर अपने पति के काम में हाथ बंटा रही है। क्योंकि मोचियों को वर्ण व्यवस्था में शूद्रों की श्रेणी में रखा गया है इसलिए लड़की के घरवाले इस बात पर बहुत दुखी हुए कि उन्होंने अपनी लड़की गलत घर में दे दी है। इस घटना के बाद रावतों और मेरों के बीच शादियां बंद हो गईं। इस किस्से को देखकर भी यही लगता है कि यह बात निहित धार्मिक स्वार्थ रखने वाले संगठनों ने एक खास समुदाय को बदनाम करने के लिए फैलाई है। समुदाय के बुजुर्गों में से कोई भी इस तरह की किसी घटना के समय या स्थान की तस्दीक करने की स्थिति में नहीं था।

आज़ादी से पहले एक बैठक

सन् 1947 में मेजर (रिटायर्ड) फतेह सिंह रावत ने पाली जिले में सेंधड़ा नामक स्थान पर एक विशाल सभा बुलाई थी जिसमें लगभग एक लाख मेरों ने हिस्सा लिया था। जोधपुर के राजा गज सिंह ने इस बैठक की अध्यक्षता की थी। यह सभा भारत के प्रति वफादारी व्यक्त करने के लिए बुलाई गई थी। देश के प्रति वफादारी साबित करने के लिए शर्त रखी गई कि सभी सहभागियों को "झटका गोश्त" खाना होगा। मेरों ने यह प्रस्ताव खारिज कर दिया क्योंकि ये लोग केवल हलाल गोश्त ही खाते हैं। दोनों समुदायों के संबंधों के लिहाज से यह घटना बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई और दोनों के बीच विवाहों की परंपरा को धक्का लगा।

असली कारण चाहे जो रहा हो, इसमें कोई शक नहीं कि एकतरफा संबंध बहुत लंबे समय तक नहीं चल सकते। कोई नहीं जानता कि मेरों में निकाह का चलन कहां से शुरू हुआ मगर 1940 के दशक से निकाह के मुकाबले फेरों का चलन कमजोर पड़ने लगा था। हिंदू परंपराओं के अनुसार होने वाली शादियां लगातार घटती जा रही हैं। परंतु विवाह के स्वरूप (यानी निकाह या फेरे) के बारे में अनिश्चितता के कारण बहुत सारे लोगों को शुद्धतावादी रुख अपनाने में परेशानी ज़रूर पैदा हो जाती है।

भंवर सिंह चौहान ने पिछले साल बहुत दुख के साथ अपनी बेटी का विवाह किया है। वह भाजपा के समर्थक हैं और हिंदू संस्कारों के अनुसार अपनी बेटी का विवाह करना चाहते थे। उन्होंने विवाह समारोह का निमंत्रण देते हुए शादी के कार्ड भी बंटवा दिए परंतु आख़िर में उन्हें अपनी बेटी की शादी निकाह की विधि से ही करनी पड़ी। उल्लेखनीय है कि इस समुदाय में विवाह की विधि दुल्हन का परिवार तय करता है। यानी, शादी निकाह की विधि से होगी या फेरे होंगे, यह बात लड़की का बाप ही तय करता है। परंतु भंवर सिंह को यह अधिकार नहीं मिला। उन्हें अपने चीता समुदाय का फ़ैसला मानना पड़ा। दुर्भाग्यवश, धार्मिक चरमपंथियों से प्रभावित नेताओं के कुछ फ़ैसलों के बाद ज्यादातर परिवार अब निकाह के ही पक्ष में दिखाई देते हैं।

कोई ख़ास धर्म या आस्था अपना लेने से अकसर व्यक्ति की जातीय पहचान और हैसियत पर असर नहीं पड़ता। जिन परिवारों ने हिंदुत्व या इस्लाम अपना लिया है वे सभी समुदायों की तरफ से बहुत सारी समस्याएं

झेल रहे हैं। समाज के तथाकथित शुद्धतावादी तबके उनके साथ विवाह संबंध नहीं बनाना चाहते। इसके लिए उन्हें अपनी पुरानी बिरादरी में ही लौटना पड़ता है। चीता समुदाय में चीताखानी और बादरखानी (बहादुर खान के वंशज), दो गोत्र हैं। बादरखानी इस्लाम को अपनाने की कोशिश कर रहे हैं जिसके लिए वे दूसरे मुसलिम समुदायों में प्रचलित इस्लामिक रीति-रिवाजों को अपनाना चाहते हैं या अपने गांव के मौलवियों की सलाह पर चलते हैं। लेकिन उनके इस व्यवहार के कारण शादियों के मामले में उनके पास ज्यादा विकल्प नहीं बचते और अंत में उन्हें सही वर या वधू के लिए दूसरे गांवों के बादरखानी परिवारों में ही जाना पड़ता है। इसी तरह इस्लाम अपना चुके काठात परिवारों को शादी तय करते हुए डांगो (चीताजी, मेहरातजी, करणाजी और जोधाजी) को ध्यान में रखना पड़ता है। आश्चर्य की बात यह है कि इस्लामिक रंग में रंगे बादरखानी और काठात समुदायों ने भी दूसरे भारतीय मुसलिम समुदायों की तरह संबंधियों के भीतर विवाह की परंपरा को अभी तक नहीं अपनाया है। कुछ परिवारों ने अपने बेटों का खतना भी नहीं कराया क्योंकि वे एक खालिस 'हिंदू' पहचान अपनाना चाहते हैं। परंतु जब ऐसे लड़के शादी की उम्र में पहुंचते हैं तो कोई मेर परिवार उन्हें अपनी बेटियां सौंपने को तैयार नहीं होता क्योंकि वे जाति की परंपराओं का उल्लंघन कर चुके हैं। ऐसे लड़कों का शादी से ठीक पहले खतना कराया जाता है और खुद को हिंदू मानने के बावजूद उन्हें मुसलिम ढंग से निकाह करना पड़ता है। यहां इस बात का जिक्र करना ज़रूरी है कि केवल एक धर्म अपनाने का साहस मुट्ठी भर ऐसे चीता-मेहरात-काठात परिवार ही कर पा रहे हैं जो आर्थिक रूप से सबल हैं।

यह ध्यान देने वाली बात है कि विवाह से जुड़ी सांस्कृतिक परंपराओं को धार्मिक राजनीति किस तरह शुद्ध धार्मिक संस्कारों में तब्दील करती जा रही है। धार्मिक ताकतों ने अपनी संकीर्ण कोशिशें बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही शुरू कर दी थीं और वे लगभग 20 प्रतिशत आबादी में एक फांक पैदा करने में सफल रही हैं। हिंदू और मुसलिम शुद्धतावादियों के यहां लड़कियों को ब्याहने की घटनाओं में भी भारी गिरावट आई है। अब विवाह केवल चीता-मेहरात समुदाय में सिमट कर रह गए हैं। मेरों से फासला बनाने वालों में से सबसे पहला समूह रावतों का था। और अब बादरखानी और काठात भी मेरों से दूर जाने लगे हैं।

आधुनिक राज्य की विफलता

जब मैंने सलीम खान से पूछा कि एक-दूसरे से टकरा रहे हिंदू और मुसलिम संगठनों के परस्पर विरोधी रवैये से उनका समुदाय किस तरह निपटता है तो उन्होंने बताया कि “हम हिंदुओं को राम-राम और मुसलमानों को सलाम बोल देते हैं। हमारे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं।” उन्होंने बताया कि “हममें से ज्यादातर को नहीं पता कि ब्राह्मणों की तरह पूजा या मुसलमानों की नमाज का क्या तरीका होता है। चाहे मंदिर हो, मस्जिद हो या दरगाह हो, हम तो बस वहां सिर झुका लेते हैं।” उन्होंने बताया कि किस तरह उनका समुदाय दो धड़ों -- हिंदू-मुसलमान -- में बंटता जा रहा है। उनको दुख है कि “अंतरसामुदायिक विवाह अभी भी होते हैं लेकिन उनकी संख्या गिरती जा रही है। फिर भी, हिंदू हों या मुसलमान, हम सभी खुद को भाई-भाई मानते हैं। हमारे पुरखे एक ही हैं।” समुदाय में चल रही राजनीति के निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से समुदाय के अवसरवादी स्वरूप को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

आधुनिक राज्य ने संप्रभुता पाने के फौरन बाद से ही मेरों की सामासिक स्थिति के बारे में चुप्पी साध ली थी। मुझे हैरानी है कि पंचवर्षीय योजनाओं में ऐसे सामासिक समुदायों को नजरअंदाज क्यों किया गया? इस इलाके में आजीविका साधनों को प्रोत्साहित और विकसित करने के लिए कोई विशेष आर्थिक पैकेज तैयार क्यों नहीं किया गया? दरअसल, इस क्षेत्र के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया गया है जैसा कि देश के दूसरे गरीब इलाकों के साथ किया जा रहा था। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी राज्य आधारित कल्याणकारी सेवाओं को उत्तर भारत के किसी भी स्कूल या स्वास्थ्य केंद्र की तरह निष्प्राण हो जाने दिया। शासन में मेरों के प्रतिनिधित्व की कमी को आसानी से समझा जा सकता है परंतु राष्ट्रीय राजनीति में मौजूद अन्य प्रगतिशील दूरदर्शी लोगों के इरादों पर कैसे संदेह किया जा सकता है। इस उपेक्षा का एक सकते में डाल देने वाला उदाहरण मेरों में सेना की नौकरियों के प्रति अनिश्चितता से दिखाई देता है। राष्ट्रीय नेतृत्व ने आजादी मिलने से ठीक पहले ब्रिटिश फौज की अजमेर बटालियन को समाप्त करके मेरों की आजीविका का एक शानदार स्रोत खत्म कर दिया था। इस फ़ैसले से बहुत सारे जवानों की नौकरियां जाती रहीं। मेर एक जुझारू नस्ल है और इसीलिए उन्हें ब्रिटिश फौज में

भर्ती किया गया था। इसके लिए यह नहीं देखा जाता था कि उनका धर्म क्या है। 1980 में कायमखानी कोटा के तहत इस समुदाय के नेतृत्व ने जैसे-तैसे अपने समुदाय की भर्ती दोबारा शुरू करवाई थी। कायमखानी राजस्थान के मुसलमान होते हैं जिन्हें मेरों की तरह राजपूतों का ही वंशज माना जाता है। लिहाज़ा, यह समुदाय एक साथ धर्म और आरक्षण, दोनों की राजनीति की चपेट में आ गया। बाद में कायमखानी कोटे के तहत मेरों को दिया जा रहा आरक्षण भी समाप्त कर दिया गया और अब यह समुदाय फिर से कोटा बहाल करवाने के लिए जूझ रहा है। केंद्र और राज्य सरकार के स्तर पर लिए जा रहे भेदभाव भरे फ़ैसलों से मेरों को भी धर्म और जाति की संकुचित और चतुराई भरी राजनीति सीखनी पड़ रही है। सवाल यह है कि रक्षा मंत्रालय एक ऐसे सामासिक समुदाय के युवाओं को नजरअंदाज क्यों कर रहा है जो भर्ती के समय शारीरिक मानदंडों पर पूरी तरह खरे उतरते हैं। वैसे भी इस समुदाय के जवान भारतीय रक्षा बलों के धर्मनिरपेक्ष चरित्र की कसौटी पर भी पूरी तरह खरे उतरते हैं।

इस समुदाय में साक्षरता और स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के प्रति सरकार के उपेक्षापूर्ण रवैये से धार्मिक समूहों को अपने पैर फैलाने का काफी मौका मिल गया है। ये संगठन अपनी भेदभाव भारी विचारधारा को स्कूल और स्वास्थ्य केंद्र जैसी कल्याणकारी सुविधाओं की आड़ में फैला रहे हैं। जिला प्रशासन ने अपना हस्तक्षेप केवल गुप्तचर सेवाओं के ज़रिए पुलिस चौकसी तक सीमित कर दिया है। इससे वर्तमान राज्य सरकार को भी फायदा होता है। शुक्र की बात है कि सरकारी प्राथमिक स्कूलों के दाखिला फॉर्म में अभी धर्म का कॉलम नहीं रखा गया है मगर जन्म प्रमाण पत्र में यह कॉलम ज़रूर होता है। और वहां इन लोगों को मुसलिम की श्रेणी में रख दिया जाता है। जन्म प्रमाण पत्र भरने वाली आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के अनुसार "जो लोग खतना कराते हैं वे मुसलमान ही होते हैं।"

मैं संविधान की धारा 25 के अंतर्गत धार्मिक स्वतंत्रता के प्रावधानों पर उंगली नहीं उठा रहा हूं। परंतु दुर्भाग्यवश, धर्म का प्रसार और प्रचार आमतौर पर दूसरे धर्मों तथा उसके तौर-तरीकों की हीनता या दुर्बलताओं को उजागर करते हुए ही आगे बढ़ता है। उपरोक्त सनकी तौर-तरीकों की आलोचना करने की बजाय हमें नागर समाज की सीमित भूमिका का भी अध्ययन करना चाहिए। नागर समाज की कोशिशों में सामाजिक परिवर्तन

का उत्साह दिखायी नहीं देता। इसीलिए दक्षिणपंथी ताकतें तेजी से फैलती जा रही हैं क्योंकि उनके पास ज्यादा समर्पण है। राज्य व्यवस्था और देश का धर्मनिरपेक्ष नागर समाज सरकार में बैठे धार्मिक कट्टरपंथियों पर अंकुश लगाने में विफल रहा है। धर्म और जाति आधारित विमर्शों को मेर जैसे समुदायों तक न ले जा पाने से यहां धार्मिक उन्मादियों को खुला मैदान मिल गया है।

निष्कर्ष

इस रिपोर्ट में पीछे भी मैंने कई बार इस बात का जिक्र किया है कि मेरों में समन्वयवादी परंपराओं के शुरू होने का समय और कारण ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। ज्यादातर ब्यौरे ठोस तथ्यों की बजाय जनश्रुतियों और प्रचलित मान्यताओं पर आधारित हैं। मुझे आशा है कि यह रिपोर्ट पाठकों को इस बात का अंदाजा दे सकती है कि इस बारे में निश्चित तथ्य क्यों उपलब्ध नहीं हैं। परंतु मैंने इस सवाल को विस्तार से नहीं उठाया है क्योंकि मेरे अध्ययन का असली मकसद ये पता लगाना था कि जो समुदाय सदियों से सामासिक परंपरओं के अनुसार चला आ रहा था उसमें सांप्रदायिक राजनीति किस तरह पनप रही है और धार्मिक ध्रुवीकरण किस तरह आकार ले रहा है।

मेरे साथ चर्चाओं में समुदाय के बुजर्गों ने दावा किया उन्होंने अपनी ऊंची नस्ल को बरकरार रखने के लिए बालिका शिशु हत्या की प्रथा शुरू की थी। ये लोग बाकी जातियों को अपने बराबर का नहीं मानते। वे खुद को राजपूत मानते हैं मगर बदकिस्मती से राजपूत भी उनके साथ रोटी-बेटी के संबंध बनाने को तैयार नहीं थे। राजपूत इस समुदाय के इतिहास के कारण उन्हें अपना नहीं मानते। ऊंची हैसियत के बारे में समुदाय का यह नस्ली दावा इस बात को दर्शाता है कि अंतर्जातीय संबंध कितने सख्त सांचे में ढले होते हैं और मेरों में भी उनकी अपनी जाति के उदय की कठोर सचाई पर भी हावी हो चुके हैं। ये लोग लूटपाट करके आर्थिक संकटों से तो निजात पा सकते थे लेकिन सामाजिक कलंक और बदनामी से छुटकारा पाना आसान नहीं था। वे अपने उद्‌गम की प्रक्रिया को अनदेखा करके खुद ही ऊंच-नीच पर आधारित संकुचित जाति व्यवस्था के भंवर में फंस गए हैं। विडम्बना यह है कि वे अभी चौहानों

के साथ अपने संबंध को लेकर गर्व महसूस करते हैं परंतु इस बात पर विचार नहीं करते कि "आधा चौहान" होने की वजह से उन्हें कितना भेदभाव झेलना पड़ा था।

पूर्ण इस्लामीकरण या पूर्ण हिंदूकरण के प्रति मेरों का विरोध समुदाय में प्रचलित ऐतिहासिक व्यवहारों से उपजा है। पूरे राज्य में जाति की संरचना बहुत सख्त है और चीता-मेहरात जातियों को सामासिक माना जाता है। समुदाय में सामासिक परंपराओं का प्रचलन किसी तरह के गर्व की भावना से जुड़ा हुआ नहीं है बल्कि यह समुदाय की कड़ी जातीय परंपराओं का नतीजा है। जो परिवार अपनी पुरानी आस्थाओं के स्थान पर नई "शुद्ध" आस्था अपनाना चाहते हैं वे समुदाय की सामासिक परंपरा को लेकर शर्म महसूस करने लगे हैं। मेर इस बात को भूल गए हैं कि वे भी उसी भेदभाव भरी जाति व्यवस्था के शिकार हैं जिसको अब वे खुद सींच रहे हैं। गौर करने वाली बात ये है कि जातीय पूर्वाग्रहों ने एक ऐसे समुदाय में अपनी गहरी पैठ बना ली है जो खुद ही जाति व्यवस्था की सख्तियों और अन्यायों से उपजा था।

जब हमने समुदाय के एक शिक्षक से पूछा कि किसी एक धर्म को अपनाने के प्रति हिचक के क्या कारण हैं तो उन्होंने कहा कि "दूध से दही तो बन सकता है पर दही से दूध कभी नहीं बन सकता।" मेरा खयाल है कि राज्य की कड़ी जातीय संरचना या धार्मिक संरचना को इस बयान के सहारे बखूबी समझा जा सकता है। औरों ने एक जमाने में मेरों पर जो पाबंदियां थोपी थीं अब मेरों की बिरादरी उन पाबंदियों को खुद अपने ऊपर थोप रही है।

दोनों मुख्य धड़े अंकों की सियासत में उलझे हुए हैं। समुदाय में राजस्थान चीता-महरात (काठात) महासभा की ज्यादा पैठ है क्योंकि वह लंबे समय से सक्रिय है। इस महासभा का जोर इस बात पर है कि मेर लोग प्रमाणपत्रों में इस्लाम को अपना धर्म लिखें। वीएचपी द्वारा बनाई गई नई महासभा उन्हें किसी भी सूरत में हिंदू धर्म के छाते तले रखना चाहती है। भाजपा सरकार द्वारा लाया जा रहा धार्मिक स्वतंत्रता अधिनियम इस दिशा में एक और कोशिश है।

बाकी दुनिया से मेरों का सीमित सम्पर्क तथा दूसरे समुदायों पर उनकी निर्भरता से उन्हें अपनी सदियों पुरानी आस्थाओं को बनाए रखने

में भी मदद मिली है। समुदाय के नेताओं का गर्वपूर्वक दावा है कि तमाम मुश्किलों के बावजूद सल्तनत काल से आज तक समुदाय में धर्म को लेकर किसी तरह का कोई टकराव नहीं हुआ है। यह आशावाद सराहनीय है परंतु नए रोजगार अवसरों के ज़रिए दूसरे समुदायों के साथ बढ़ते संपर्कों से समुदाय में शुद्धतावादियों की ताकत बढ़ती जा रही है। भविष्य में भी यह एकता बनी रह पाएगी, इस आशय का विश्वास अब ख़तरे में पड़ता दिखाई दे रहा है क्योंकि समुदाय में सांप्रदायिक व्यवहार जन्म लेने लगे हैं। यह समुदाय आने वाले सालों में निश्चित रूप से धर्म आधारित ध्रुवीकरण की ओर बढ़ रहा है।

धर्म और जाति आधारित कट्टरता प्रायः वहां ज्यादा पनपती है जहां सामाजिक सुरक्षा कम होती है। निम्नलिखित उदाहरण से इस बात को समझा जा सकता है। 1978 में जब तक तीनों कपड़ा मिलें मुनाफे में चल रही थीं तब तक धार्मिक ताकतों की पैठ बहुत कम थी। उस समय मिल मजदूरों की एक मजबूत ट्रेड यूनियन थी जो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) से संबद्ध थी। भाकपा का दफ्तर अभी भी बंद पड़ी मिलों के पास ही है। इन कारखानों के बंद हो जाने से ट्रेड यूनियन निष्क्रिय हो गई है और इलाके में धार्मिक उन्माद बढ़ा है। वामपंथी ताकतों की विफलता से शूण्य पैदा हो गया है। संयोग से भाकपा कार्यालय के निकट ही एक विशाल मस्जिद तथा मुस्लिम बच्चों के लिए एक स्कूल खोल दिया गया है। स्कूल की यह इमारत एक जमाने में किराए पर मजदूरों को रहने के लिए दी जाती थी।

किसी भी समुदाय में सांप्रदायकि राजनीति को हवा देने वाले नेता अकसर समुदाय की मौजूदा दुर्दशा के लिए ऐतिहासिक घटनाओं या परंपराओं को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। इसी आधार पर अतीत में किसी समुदाय के साथ हुई नाइंसाफी को उसकी मौजूदा दुर्गति के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। लिहाज़ा, इतिहास ही वर्तमान को निर्धारित करता है और अन्य प्रासांगिक समकालीन तथ्यों पर ध्यान दिए बिना समुदाय के भविष्य की दिशा तय करता है। इस तरह की बहसें सामाजिक-आर्थिक विकास से जुड़े ज्वलंत मुद्दों को ढक लेती हैं जो कि मेरों की फिलहाल सबसे बड़ी ज़रूरत है। आमतौर पर सांप्रदायिक कोशिशें दो अलग-अलग धर्मों के लोगों के बीच दंगों या खुले टकरावों के रूप में सामने आती हैं। प्रस्तुत रिपोर्ट साझा

आस्थाएं रखने वाले लोगों में फैलती धार्मिक राजनीति को समझने का एक प्रयास है। इस विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि भविष्य में इससे किस तरह के टकराव पैदा हो सकते हैं। इस रिपोर्ट के माध्यम से मैंने ऐसे मुद्दे उठाने का प्रयास किया है जो आमतौर पर मामूली या अप्रासंगिक मान लिए जाते हैं मगर समुदाय के लोगों को धर्मांध बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण साबित होते हैं।

किसी भी धर्म को पनपने के लिए परिवर्ततनशील होना चाहिए वरना वह जनता में अपना आकर्षण खो देता है। यही स्थिति चीता-महरात समुदाय की सामासिक आस्थाओं के बारे मे कही जा सकती है जो आसपास के बदलते सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य से धीरे-धीरे प्रभावित होने लगी है। बाहरी ताकतों द्वारा धर्म परिवर्तन की ये कोशिशें काफी गंभीर हैं क्योंकि इनमें धार्मिक जुड़ाव के ज़रिए सामाजिक उन्नति का झांसा दिया जा रहा है। मेर समुदाय का सामासिक स्वरूप कायम रहेगा या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि बाहरी दुनिया से उसका कैसा संबंध बनता है और उसे कैसे आर्थिक अवसर मिलते हैं। यह लक्ष्य नागर समाज की सहायता से केवल स्थानीय शासन ही हासिल कर सकता है। मेरों की सामाजिक उन्नति के लिए धार्मिक समूहों द्वारा की जा रही कोशिशों के असर काफी सीमित रहे हैं। सूक्ष्म स्तर पर उनकी कोशिशें परिवर्तन की बजाय भ्रम को ज्यादा जन्म दे रही हैं।

जो लोग धर्म में आस्था रखते हैं उनके लिए धर्म ही समाज में नैतिकता और मूल्यों के सुदृढ़ीकरण का सबसे बड़ा स्रोत होता है। ऐसे निराश व्यक्ति के लिए यही उम्मीद की आख़िरी किरण होती है और इसमें उसे चमत्कारी संतोष मिलता है। मैं मानव जीवन में धर्म की भूमिका पर उंगली उठाने का प्रयास नहीं कर रहा हूं मगर मुझे इस बात पर ज़रूर संदेह है कि क्या धर्म ही मुक्ति का एकमात्र स्रोत हो सकता है। विभिन्न धार्मिक समूहों के धार्मिक उपदेशों और प्रचार से धार्मिक पूर्वाग्रह फैल रहे हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से दमनकारी जाति व्यवस्था को बल प्रदान कर रहे हैं। यह प्रचार लोगों की तर्कशीलता पर अंकुश लगाकर उनके जीवन को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहा है। मेरों में इस तरह के रवैयों के फैलने से आधुनिक राज्य द्वारा सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु धर्म आधारित मांगें पैदा होने लगी हैं।

रोहन सिंह का कहना है कि “हमारा समुदाय बहुत अनूठा है। मुझे नहीं लगता कि पूरे भारत में हमारे जैसा और कोई भी समुदाय होगा।” उनके मामा बुलंद खान भी इस राय से इत्तेफाक रखते हैं। वह मुझे बताते हैं कि “हमारी जिंदगी का फलसफा है ‘जियो और जीने दो।’ लोगों को जैसे चाहे वैसे पूजा-पाठ की आजादी मिलनी चाहिए।” वह मानते हैं कि “कुछ चीता-महरात अपनी पहचान को लेकर शर्मिंदगी महसूस करते हैं। दूसरे लोग उनका मजाक उड़ाते हैं और कहते हैं कि वे भटके हुए हैं। वे कहते हैं कि हम दो नावों में सवारी करना चाहते है।” परन्तु बुलंद खान को विश्वास है कि “मेरे खयाल में हम सही हैं। हममें से कुछ मुसलमान हैं और कुछ हिंदू - जैसे मैं और मेरा भाँजा। लेकिन हम प्यार-मोहब्बत से साथ रहते हैं। हमारे बीच रोटी-बेटी के लंबे रिश्ते हैं। मजहब तो निजी मामला है। इससे हमारे संबंधों पर असर नहीं पड़ता।”

समुदाय के लगभग 80 प्रतिशत परिवार आज भी तमाम मुश्किलों के बावजूद अपनी पुरानी आस्थाएं संजोए हुए हैं। राजस्थान में और राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय नागर समाज को मेरवाड़ा इलाके में फैल रही धार्मिक राजनीति पर ध्यान देना चाहिए। नागर समाज और जन संगठन मेरों के सामाजिक विकास की समस्याएं उठाते हुए धर्मनिरपेक्ष व्यवहारों के प्रचार-प्रसार के ज़रिए सामाजिक परिवर्तन की अपनी भूमिका को आगे बढ़ा सकते हैं। इस समुदाय के स्वरूप को देखते हुए नागर समाज की इन कोशिशों के निश्चित रूप से अच्छे नतीजे सामने आएंगे। इससे पहले कि देर हो जाए, आइए फौरन कदम बढ़ाएं।

संदर्भ

1 खंड 38, एंथ्रोपॉलिजिकल सर्वे आफ इंडिया
2 स्केच आफ मेरवाड़ा, कर्नल सी.जे. डिक्सन
3 रावत-राजपूतों का इतिहास, ठाकुर प्रेम सिंह चौहान
4 राजस्थान चीता-महरात (काठात) महासभा के पत्र
5 राजस्थानी चीता-महरात मागरा मेरवाड़ा महासभा के पत्र
6 दी हिंदू, दैनिक भास्कर एवं राजस्थान पत्रिका में छपे लेख

चीता समाज में पूजा का स्थान

गांव में मज़ार